मैं पुष्टिभक्तिमार्गीय वैष्णव हूं.

श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञाका निष्ठापूर्वक अनुसरण करना यह मेरा परमधर्म है.

देवाधिदेव पुष्टिपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही एक मेरे आश्रय स्थान हैं.

मन, वाणी और कृति इन तीनोंसे श्रीकृष्णकी सेवा करनेमें ही मेरे जीवनकी कृतार्थता है.

श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञाका अनुसरण करनेवाले सभी वैष्णव और गुरुजन मेरेलिये आदरणीय हैं.

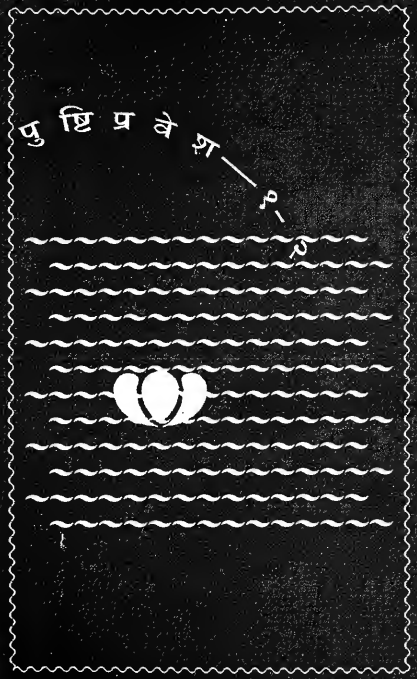

पुष्टिप्रवेशः—१-२

पुष्टिप्रवेश १–२

लेखक : गोस्वामी शरद अनिरुद्धलालजी, मांडवी-हालोल.

प्रकाशक : श्रीपुरुषोत्तम पुष्टिमार्गीय चेरिटेबल ट्रस्ट, जुनागढ़.

प्रकाशन वर्ष : १९९४.

प्रथम आवृत्ति : ३०००.

श्रीपुरुषोत्तम पुष्टिमार्गीय पाठशाळा(जुनागढ़)द्वारा संचालित पुष्टिमार्गीय परीक्षाके द्वितीय वर्षके परीक्षार्थिओंकेलिये

निःशुल्कवितरणार्थ सौजन्य : श्रीवल्लभविद्यापीठ-श्रीविट्ठलेशप्रभुचरण आ.हॉ. ट्रस्ट (कोल्हापुर).

मुद्रक : ऐच.के.प्रिन्टर्स, १२० शिव शक्ति इन्डस्ट्रीयल एस्टेट, मरोल, अन्धेरी (पूर्व), बम्बई.

परीक्षासंचालक मुख्य केन्द्र :
श्रीपुरुषोत्तम पाठशाळा
द्वारा : गो. श्रीकिशोरचन्द्रजी श्रीपुरुषोत्तमलालजी
मोटी हवेली, जुनागढ़.

परीक्षासंचालक उपकेन्द्र :

१. श्रीगोविन्दभाई गांधी
'व्रजरज', पोस्ट ओफिस पासे, हालोल, जि. पंचमहाल.
पिन : ३८९ ३५०, फ़ोन : ०२६७६-२७१९.

२. श्रीकृष्णकान्तभाई वोरा
बी-१५, गुजराती सोसायटी, नेहरू रोड़, विलेपार्ले-पूर्व,
मुम्बई : ४०००५७.
फोन : ०२२-६१४८२५४.

॥ श्रीदामोदरमदनमोहनौ प्रभू विजयेते ॥
॥श्रीवल्लभाधीशो जयति जयति श्रीविट्ठलेश्वरः॥

गो. श्रीकिशोरचन्द्रजी श्रीपुरुषोत्तमलालजी

मोटी हवेली,
पांचहटड़ी, जुनागढ़,
३६२ ००१.

श्रीपुरुषोत्तम पुष्टिमार्गीय पाठशाला, जुनागढ़ द्वारा संचालित पुष्टिमार्गीय परीक्षा कार्यक्रमकी दूसरी-तीसरी पाठ्यपुस्तकोंका हिन्दी-अनुवाद 'पुष्टिप्रवेश – १-२' परीक्षार्थिओंके हाथमें आ रहा है.

आज सोरठ और अन्य भी प्रांतोंके वैष्णव समाजमें मार्गके प्रति जागरुकता आ रही है. वैष्णव जन सभामें खड़े हो कर विनयपूर्वक गोस्वामी आचार्योंको प्रश्न पूछते हो गये हैं. सिद्धान्त-अपसिद्धान्तोंको सविवेक समझने भी लगे हैं. यही तो इस परीक्षाकार्यक्रमकी सफलता है.

पुष्टिप्रभु और श्रीआचार्यचरण की कृपासे इस परीक्षाकार्यक्रमद्वारा पुष्टिमार्गिओंके सिद्धान्तोका अज्ञान दूर हो और ज्ञानका प्रकाश फैले ऐसी अंतःकरणकी शुभकामनाके साथ. . .

गो. किशोरचन्द्र पुरुषोत्तमलालजी.

॥श्रीहरिः॥

जयति श्रीवल्लभार्यो जयति च विट्ठलेश्वरः प्रभुः श्रीमान्।
पुरुषोत्तमश्च तैश्च निर्दिष्टा पुष्टिपद्धतिर्जयति॥

गोस्वामी श्याम मनोहर

६३, स्वस्तिक सोसायटी,
४था रस्ता, जुहूस्कीम, पार्ले,
मुंबई ४०००५६

उपनिषदोंकी भाषामें—''श्रवण-मनन-निदिध्यासन'' कहें या भागवतकी भाषामें—''श्रवण-स्मरण-कीर्तन'' कहें अथवा तो चालु बोलचालकी भाषामें—''कथा-सत्संग' कहें, कोई भी शब्दावली वापरें, इनके दो स्वरूप सैद्धान्तिक रीतसे स्वीकारने पड़ते हैं: संबोध और साधना. 'संबोध' यानि सिद्धान्त या कर्तव्य की सच्ची समझ प्राप्त करनेकेलिये उपदेशक गुरुकी उपस्थिति द्वारा अभीष्ट शास्त्रोंका श्रवणादि करना. 'साधना' यानि गुरुमुखसे सुनी बातोंको अनुष्ठानान्वित करना.

प्राचीन आदर्शोंको भूल जानेके कारण आज हम उपदेशरूप श्रवणादिको साधनांके रूपमें मान लेनेकी और साधनाकी बाबतमें उपदेशग्रहण करनेकी मनोभ्रमणामें कहीं भटक गये हैं. अतएव स्वसिद्धान्त या कर्तव्य के बोधकेलिये जो कथा-प्रवचन होते थे उनमें श्रवणभक्तिकी भ्रमणा घर कर गयी है. इसी तरह साधनारूपेण जो स्वयंके घरमें भगवत्सेवा-भगवत्कीर्तन करने चाहिये थे, उनकी जगह व्यापारिक तौरपर आयोजित किये जाते सेवा-कीर्तनोंके आयोजनोंमें,'' कुछ न कुछ तो जानना मिलेगा ही'' ऐसे मनोभाव रख कर ऐसे आयोजनोंको हम प्रोत्साहन देते रहते हैं. इस वैपरीत्यके कारण आधुनिक पुष्टिमार्गमें ''दुविधामें दोनों गये!'' चरितार्थ हो रहा है.

श्रीपुरुषोत्तम पाठशाला (जुनागढ़)द्वारा आयोजित स्वमार्गीय सिद्धान्तप्रशिक्षण के कार्यक्रममें तृतीय पुस्तिका 'पुष्टिप्रवेश-२' जो प्रकट होने जा रही है वह श्रीमहाप्रभु-श्रीप्रभुचरणके शुभाशिर्वादसे पुष्टिमार्गिओंमें पुष्टिबोध और पुष्टिभाव उद्बुद्ध करनेमें सफल-सुफल हो ऐसी शुभेच्छाके साथ...

गो.श्या.म.

प्राक्कथन

''श्रीपुरुषोत्तम पुष्टिमार्गीय पाठशाला'' द्वारा संचालित पुष्टिमार्गीय परीक्षामें भाग लेनेवाले परम भाग्यवान आप सभी वैष्णवोंके हाथमें, द्वितीय वर्षकी अर्थात् तृतीय परीक्षाकी पाठ्यपुस्तिका 'पुष्टिप्रवेश—१-२' रखते हुवे मुझे अतिशय आनंदकी अनुभूति हो रही है.

'प्रवेशिका'की तरह 'पुष्टिप्रवेश'की भी दो परीक्षा ली जायेंगी. परीक्षार्थिओंको अध्ययनकी उचित दिशा मिले इस हेतुसे पुस्तिकाके अंतमें 'बोधपरीक्षण'में पाठके क्रमानुसार प्रश्नों तथा पारिभाषिक शब्दों का समावेश किया गया है.. इससे पढ़ लेनेके बाद आप पढ़े हुवे पाठको कितना समझ पायें हैं इसकी परीक्षा स्वतः कर पायेंगे ऐसी आशा है. परीक्षार्थिओंकी सुविधा हेतु पुस्तिकामें प्रयुक्त कठिन पारिभाषिक शब्दोंकी समझ पादटिप्पणी (फुटनोट) के रूपमें दी गयी हैं. इसके अलावा पाठके अंतमें उन-उन विषयोंका विशेष अध्ययन जो करना चाहते हों उनकेलिये संदर्भग्रंथोंकी सूची भी दी गयी है.

इस पुस्तकके प्रकाशनमें हमारे सहयोगी श्रीमनीष वाराई तथा 'पुष्टिमार्ग अने आधुनिकता' पुस्तकके लेखक श्रीअसित शाह के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं. शुद्ध-शुद्ध पुष्टिमार्गीय सिद्धांतोंको पुष्टिमार्गमें निष्ठाशील प्रत्येक वैष्णव तक पहोंचानेके सदुद्देश्यसे प्रारब्ध परीक्षा-कार्यक्रमके प्रयासको आशिर्वाद दे कर पूज्य श्रीश्यामदादाने हमारे मनोबलको जो सुदृढ़ किया है, उस बारेमें कुछ भी कहना अनधिकार-चेष्टा ही होगी.

अंतमें 'प्रवेशिका'से पुष्टिमार्गके द्वारपर आ पहोंचे पुष्टिजीवोंके हृदयमें भक्तिमार्गाब्जमार्तण्ड आचार्यचरण श्रीमहाप्रभुजी पुष्टिप्रवेश सुगम बनाये ऐसी शुभकामनाके साथ...

परीक्षासंचालक-मंडलकी ओरसे
श्रीनाथजीपाटोत्सव गो.शरद

अनुक्रमणिका

१. श्रीमहाप्रभुजी १–८
भगवदाज्ञासे प्राकट्य— बाल्यकाल— भारत भ्रमण— त्याग— सादगी— एकांतप्रियता— विद्वत्ता— आदर्श गुरु— ग्रंथरचना— तिरोधान

२. श्रीगोपीनाथजी ९–११
साधनदीपिका— तिरोधान

३. श्रीगुसांईजी १२–१५
दिव्यत्याग— सर्वसमर्पण के लिये सेवा क्रमका विस्तार— जीवमात्रपर दया— ग्रंथरचना— प्रचारयात्रा— तिरोधान

४. श्रीयमुनाजी १६–१८
भक्तोद्धार के लिये प्राकट्य— माहात्म्य— ऐश्वर्य

५. श्रीकृष्ण १९–२७
आसुरी जीवोंको प्रभुस्वरूपका ज्ञान नहीं होता है— प्रभु अज्ञान दूर करें तब प्रभुस्वरूपका ज्ञान होता है— प्रभुस्वरुपका ज्ञान और प्राप्ति भक्ति से— भगवान्‌का स्वरुप— नाम अनेक श्रीकृष्ण एक— प्रभुके विविध नाम— रूपोंका रहस्य— प्रभु पाकट्य के प्रयोजन— अवतार के प्रकार— निष्कर्ष

६. जीव २८–३१
जीव की तीन अवस्था— जीव के प्रकार— जीवोंकी पहचान

७. जगत ३२–३५
भगवल्लीला— भगवत्क्रीड़ा— सर्वं खलु ईदं ब्रह्म— तिरोहित— आविर्भूत— शुध्द ब्रह्मात्मिका जगत— आविर्भाव— तिरोभाव

८. मार्ग ३६–३८
मार्ग— मार्ग के प्रकार— पुष्टिभक्तिमार्ग— मर्यादामार्ग— कर्ममार्ग— ज्ञानमार्ग— उपासनामार्ग— प्रवाहमार्ग

९. सम्प्रदाय ३९—४४
सम्प्रदाय— सम्प्रदायकी आवश्यकता— सम्प्रदायका आचरण श्रेष्ठ— सम्प्रदायके घटक तत्त्व— तत्त्वोपदेश— सिध्दांतोपदेश— व्यवहारोपदेश— फलोपदेश (विधानात्मक तथा निषेधात्मक)— साधना के आंतर और बाह्य पक्ष— सम्प्रदाय रहित साधना निष्फल

१०. पुष्टिभक्तिमार्ग ४५–४८
पुष्टिभक्तिमार्ग की पृष्ठभूमि— दर्शनवादी पुष्टिभक्तिमार्गी नहीं होते

पुष्टिप्रवेश — २

११. भगवदाश्रय ४९—६६
आश्रय— आश्रयकी महिमा— समयके भरोसे न रहो— आश्रयका स्वरूप— सभीके आश्रयरूप भगवान्— आश्रयका स्मरण जरूरी— लौकिक सुखदुःखके कारण कर्तापनेका अभिमान— लौकिक सुख भी पीड़ाकारी— भगवदाश्रय/शरणागतिसे निश्चिंतता— प्रभुको याद न करनेवालेको प्रभु भी याद नहीं करते— सुखमें भी प्रभुका स्मरण— भगवत्स्मरणमें समयबंधन नहीं— प्रभुका स्मरण स्वाभाविकतासे— शरणागतरक्षक भगवान्— भगवान्‌से लौकिक कुछ भी मांगना व्यापारीवृत्ति है— भगवदाश्रय सर्वदा सर्वथा— भगवदाश्रयकी दृढ़ताके उपाय— दीनता विकसित करनेके उपाय.

१२. अन्याश्रयत्याग ६७—७७
अन्याश्रय— 'अन्याश्रय'का अर्थ— इष्टदेव— अन्याश्रय कब और कैसे होता है— अन्य देवी-देवताओंका अनादर नहीं— आदरणीय और भजनीय- श्रीकृष्णके पास कौन जाये— अन्याश्रय प्रशंसनीय नहीं— अन्याश्रय करनेके कारण.

१३. शरणमार्ग ७८–८८
शरणमार्ग— शरणागतिके छह अंग— द्विविध शरणमार्ग- शरणमार्गमें प्रवेश किसलिये ?- शरणमार्गीयके कर्तव्य.

१४. पुष्टिभक्ति ८९–९९
पुष्टिभक्ति— भक्तिके विभिन्न प्रकार— भक्तिकी विभिन्नताके कारण— भक्तिके प्रकार— निर्गुण पुष्टिभक्ति सर्वोत्कृष्ट— निर्गुणपुष्टिभक्तिके प्रकार.

१५. बोधपरीक्षण(पुष्टिप्रवेश-१) १००-१०४
१६. बोधपरीक्षण(पुष्टिप्रवेश-२) १०५-११०

पुस्तिका कैसे पढ़ेंगे ?

१. पाठमें आते हरेक महत्त्वपूर्ण शब्दपर विशेष ध्यान देते हुवे विचारपूर्वक हरेक पाठको, कमसे कम, दो बार पढ़िये.

२. पढ़लेनेके बाद 'बोधपरीक्षण'में दिये हुवे हरेक पाठके प्रश्नोंके जवाब मनमें विचारिये. जवाब न सूंझे तो पाठमें देख कर खोज लीजिये. इस तरह हरेक प्रश्नोंका अभ्यास करिये.

३. इसी तरह पारिभाषिक शब्दोंकी व्याख्या रट कर तैयार करिये.

१. श्रीमहाप्रभुजी

साधारण मनुष्योंके जन्म-मरण उनके पूर्वजन्ममें किये हुवे कर्मोंके कारण होते हैं. महापुरुषोंके जन्म-मरण ऐसे साधारण कारणोंसे नहीं होते. जैसे कोई राजा किसी कार्यकेलिये अपने राजमहलमेंसे बाहर जाता है और कार्य समाप्त करके अपने महलमें लोट आता है, ऐसे ही महापुरुषोंके जन्म-मरण भगवान्‌की विशेष आज्ञा होनेपर, उनकी इच्छासे होते हैं. किसी विशेष कार्यकेलिये वे पृथ्वीपर अवतार लेते हैं और कार्य समाप्त करके प्रभुके पास लोट जाते हैं.

भगवदाज्ञासे प्राकट्य :

कलियुगमें, जगह-जगह फूट निकले पाषंडपूर्ण मतोंके कारण, शास्त्रोंमें वर्णित आत्मोद्धारके सारे मार्ग दुषित हो गये थे. पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्णको प्राप्त करनेका कोई भी मार्ग जानते न होनेसे पुष्टिजीव आकुल-व्याकुल हो रहे थे. यह देख भगवान् श्रीकृष्णने पुष्टिजीवोंके उद्धारकेलिये महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यको पृथ्वीपर जन्म लेनेकी आज्ञा दी. इस आज्ञाद्वारा भगवान्‌ने आचार्यचरण श्रीमहाप्रभुजीको तीन कार्य सौंपे :—

१. पुष्टिभक्तिमार्गके स्थापनद्वारा दैवी=पुष्टिजीवोंका उद्धार,
२. पुष्टिभक्तिमार्गके आधाररूप श्रीभागवतके सच्चे अर्थका प्रकाशन.
३. मुक्ति देनेवाले कर्म और ज्ञान मार्गोंके भी सच्चे स्वरूपका उपदेश.

भगवान्‌की आज्ञा मिलनेपर श्रीमहाप्रभुजी दक्षिण भारतके विद्वान् सदाचारी कृष्णभक्त ब्राह्मणकुलमें प्रकट हुवे. श्रीआचार्यचरणका प्राकट्य न होता तो कैसी परिस्थिति बनती इसका वर्णन करते हुवे श्रीगुसांईजी 'श्रीवल्लभाष्टक' स्तोत्रमें लिखते हैं :—

हे महाप्रभु! जो आप प्रकट न हुवे होते तो

दैवी सृष्टिमें+ जनमे होनेपर भी पुष्टिजीव किसी भी तरहसे श्रीकृष्णको प्राप्त न कर पाते; और इस तरह यह पुष्टिजीवोंकी सृष्टि कृष्णसेवारूप फलकी प्राप्तिके बिना व्यर्थ हो जाती. क्योंकि, शिवजीके++ अवतारद्वारा प्रवर्तित असन्मार्गोंमें भ्रमित होके वेदमार्गपर चलनेवाले जीव सच्चे भक्तिमार्गको देखनेमें समर्थ न हो पाते.

बाल्यकाल :

श्रीमहाप्रभुजीका जन्म, विक्रम संवत् १५३५ (ईस्वी सन १४७८) में अभीके मध्यप्रदेशके रायपुर जिलाके चम्पारण्य नामके वनमें, जब उनके माता-पिता प्रवास कर रहे थे उस समय हुआ. पिता श्रीलक्ष्मणभट्टजीने विद्याध्ययनकेलिये विद्वान् पंडितोंके पास श्रीमहाप्रभुजीको भेजा. मात्र आठ वर्षकी वयमें श्रीमहाप्रभुजीने संपूर्ण वेद पुराण स्मृति पंचरात्र-तंत्र आदि धर्मशास्त्र; तथा सांख्य-योग-न्याय-मीमांसा-जैन-बौद्ध आदि परमतों* का अध्ययन समाप्त कर अपनी असाधारण प्रतिभाका दर्शन कराया. १० वर्षकी वयमें आपने श्रीजगन्नाथपुरीमें मायावादी पंडितोंके साथ वाद करके उनके समक्ष साकार-ब्रह्मवाद स्थापित किया. इसी सभामें राजाने चार प्रश्न किये :—

१. सर्वश्रेष्ठ शास्त्र कौनसा ?
२. सर्वश्रेष्ठ देव कौन ?
३. सर्वश्रेष्ठ मंत्र कौनसा ?
४. सर्वश्रेष्ठ कर्म क्या ?

+ जिन जीवोंको भगवान् भक्ति या मुक्ति दे कर उनका उद्धार करनेका निर्धार करते हैं ऐसे जीवोंको दैवी जीव कहतें हैं.

++ यदि सब जीव सन्मार्गोंका अनुसरण करके मुक्त हो जायें तो सृष्टि कैसे चले ? इसलिये भगवान्ने शिवजीको पाखंडमार्गोंका प्रचार करनेकी आज्ञा दी कि जिससे आसुरी जीव लालचके कारण उन मार्गोंपर चलें और मुक्त न हो पायें.

* परमत = खुदके मतसे अलग मत.

बहोत सारे विद्वानोंने इन प्रश्नोंके उत्तर दिये परन्तु राजाको संतोष न हुआ. अन्तमें श्रीमहाप्रभुजीके सूचनपर सर्वसंमतिसे ये चारों प्रश्न श्रीजगन्नाथरायजी (श्रीकृष्ण) के सन्मुख ही श्रीमहाप्रभुजीके हस्तसे रखे गये. इसके साथ कोरा कागज और दावात-कलम भी रखके मंदिरके दरवाजे बंद करनेमें आये. कुछ समय बाद द्वार खोलनेपर, चारोंही प्रश्नोंके जवाबमें, कोरे कागजपर एक श्लोक लिखा हुवा मिला :—

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्।
एको देवो देवकीपुत्र एव॥
मंत्रोप्येकस्तस्य नामानि यानि।
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥

अर्थ: भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा कही गयी गीता ही सब शास्त्रोंका साररूप ग्रन्थ है. देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्ण ही एक सर्व देवोंके देव हैं. श्रीकृष्णके नाम ही सर्वश्रेष्ठ मंत्र हैं. और श्रीकृष्णकी सेवा ही श्रेष्ठ कर्तव्य है.

भारतभ्रमण :

राजसभामें श्रीमहाप्रभुजीने स्थापित किये हुवे मतका समर्थन स्वयं भगवान्ने उपरोक्त श्लोकद्वारा किया. इसको ही भगवान्की आज्ञा मान कर अपने मतके प्रचारार्थ भारतभ्रमणकेलिये श्रीमहाप्रभुजी पधारे. श्रीमहाप्रभुजीने दैवी जीवोंके उद्धारकेलिये तीन बार पदयात्राद्वारा भारतभ्रमण किया. इस बीच आपने बडे-बड़े पंडितोंके साथ अनेक बार धर्मकी ओर पुनः आकृष्ट किया. गोकुलमें पवित्रा ग्यारसके दिन भगवान् श्रीकृष्णके पाससे श्रीआचार्यचरणको 'ब्रह्मसंबंधमंत्र'की प्राप्ति हुयी. यह मंत्र प्राप्त होते ही आपने पुष्टिभक्तिसंप्रदायकी मंत्रदीक्षा शास्त्रार्थ (वाद)+करके शुद्धाद्वैत-पुष्टिभक्तिमार्गको सुदृढ़ किया. धर्मद्वेषी क्रूर मुसल्मानोंके आतंकके कारण धर्मसे दूर जाते लोगोंको

+ किसी विषयके बारेमें तत्त्वनिर्णय पानेकेलिये की जाती चर्चाको 'वाद' कहतें हैं.

तथा साधना की प्रणालीको व्यवस्थित किया.

त्याग :

पुराने जमानेमें राजा विद्वानोंका सन्मान करनेमें अपना सौभाग्य समझते थे. इसलिये किसी शास्त्रीय जटिल समस्याके समाधानकेलिये विद्वानोंको आमंत्रित करके शास्त्रचर्चाका आयोजन करते थे. शास्त्रचर्चामें जो विद्वान् अपने मतका स्थापन करता उसका कनकाभिषेकादिद्वारा सन्मान किया जाता था. श्रीमहाप्रभुजी भी इस प्रकारकी शास्त्रचर्चाओंमें भाग लेते और अपने मतका स्थापन करते. परिणामरूपेण राजा आपका कनकाभिषेकादि करके भेंटस्वरूप सोनामहोरें हाथी-घोड़ा सोनेचांदीके पात्र आदि अर्पण करते थे. परंतु धन-संग्रहसे बुद्धि भ्रष्ट होती है, प्रभुमें चित्त नहीं लगता, और फिर राजाका द्रव्य तो कुछ ज्यादा ही अनिष्टकारक होता है, ऐसा सोचकर त्यागमूर्ति श्रीआचार्यचरण वह द्रव्यादि ब्राह्मणोंको दानमें दे देते! इसीलिये श्रीसर्वोत्तमस्तोत्रमें आपको 'महोदारचरित्रवान् = अत्यन्त उदार चरित्रवाले' कहा गया है.

सादगी :

आपके शिष्योंमें अनेक राजा तथा साहुकार होनेपर भी आपका जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण था. आप शरीरपर धोती और उपरणा धारण करते थे. यात्रा भी आप खुल्ले चरणोंसे करते थे. यात्राके समय प्रभुकेलिये भोग-सामग्री हाथसे बनाकर भोग धरनेका आपका नियम था. यात्राके समय आप ज्यादातर गांवके बाहर एकांतमें मुक़ाम करते. जो दैवी जीव होंगे वे सामने चलकर आयेंगे, ऐसा विश्वास होनेसे, अपने आगमनकी जानकारी गांवमें किसीको भी न देनेकी आज्ञा शिष्योंको करते थे. आपके प्रतापके आकर्षणसे अनेक श्रद्धालु सामने चलकर मूल्यवान् भेंट-सोगाद लाते होनेपर भी आप अपने शिष्योंके अतिरिक्त किसीकी भी भेंट-सोगाद स्वीकारते नहीं थे.

एकांतप्रियता :

प्रभुसेवा तो घरमें एकांतमें हो सकती है. इसलिये यात्रासमाप्तिके बाद अपने सेव्यस्वरूपोंको पथराकर परिवार तथा ज्ञातिजनों सहित आपने प्रयागके पास छोटेसे अड़ेल गांवमें स्थायी निवास किया. भगवान्की इच्छासे जब जो कुछ भी मिलता उसीसे अपना निर्वाह चलाते.

विद्वत्ता :

एक बार कोई वेदपाठी ब्राह्मण आपकी परीक्षा लेने आया. एक मंत्र छोड़के एक—ऐसे १०० मंत्र वेदके वह आपके सामने बोला. श्रीआचार्यचरणने उन्हीं मंत्रोंको उलटे क्रमसे बोलकर उसके गर्वको दूर किया.

एक बार आप काशी पधारे, आपकी विद्वत्ताकी चर्चा भारतभरमें थी, इसलिये आपके साथ चर्चा करने अनेक पंडित आपके पास आने लगे. इस कारण आपको भगवत्सेवा, वैदिक कार्यों तथा उपदेश कार्यमें विघ्न पड़ने लगा. यह देख आपने 'पत्रावलंबन' ग्रन्थ लिखकर काशीके विश्वेश्वर महादेवजीके मंदिरपर लगा दिया. और ऐसी घोषणा करा दी कि इस ग्रन्थको पढ़नेके बाद भी किसीके हृदयमें कोई प्रश्न रह जाय तो वह चर्चा करने अवश्य आ सकता है. पंडितोंका आवागमन इस ग्रन्थके कारण कम हो गया. इसीलिये श्रीसर्वोत्तमस्तोत्रमें श्रीगुसांईजी आपको 'वेदपारगः = वेदको जाननेवाले' तथा 'सर्ववादिनिरासकृत् = सब वादिओंका निरास = पराजय करनेवाले' कहते हैं.

आदर्श गुरु :

सच्चा जौहरी जैसे हीरेको परखके ही खरीदता है, वैसे ही सच्चा गुरु भी दीक्षार्थीकी परीक्षा लिये बिना उसे शिष्य नहीं बनाता. भगवान्ने श्रीमहाप्रभुजीको मात्र पुष्टिजीवोंके उद्धारार्थ ही पुष्टिभक्तिमार्गको प्रकट करनेकी आज्ञा दी थी. इसलिये पुष्टिभक्तिमार्ग

मात्र पुष्टिजीवोंकेलिये ही है; विश्वधर्म नहीं है. कोई पुष्टिसृष्टिका न हो ऐसा जीव इस मार्गमें आ न जाय इसलिये श्रीआचार्यचरण दीक्षा लेने आनेवालेको परखके ही दीक्षा देते थे. दीक्षा देकर भी शिष्यको उसके भाग्यके भरोसे नहीं छोड़ देते थे. जब तक शिष्यको मार्गकी साधनारूप सेवाप्रणाली आदिका ठीकसे ज्ञान न हो जाता तब तक उसके घर ही विराज कर सब खुद ही सिखाते. जो कोई दीक्षा लेने आपके निवासस्थानपर आता तो उसे अपने यहां रख कर सब सिखाते.

कई शिष्य श्रीमहाप्रभुजीके साथ ही रहते थे. ये शिष्य परनिन्दा या प्रभुसंबंधी न हो ऐसी कोई लौकिक चर्चा तो नहीं कर रहे, इस बातका खयाल रखने आप नियमितरूपसे रातको दो-तीन बार शिष्योंको देखने पधारते. छोटे अबोध बालककी चिंता हर पल जैसे माताको होती है, ऐसी ही चिंता गुरुको अपने शिष्योंकेलिये रखनी चाहिये. यह बात आपके चरित्रसे समझमें आती है.

ग्रंथरचना :

भगवान्ने पृथ्वीपर अवतार लेकर जीवोंका उद्धार किया और भविष्यमें भी दैवी जीवोंका उद्धार हो इसलिये, ज्ञानावतार श्रीवेदव्यासरूपसे श्रीभागवतकी रचना की. वैसे ही श्रीमहाप्रभुजीने पुष्टिजीवोंको पुष्टिप्रभुके सेवा-स्मरणका मार्ग दिखाकर भविष्यमें भी पुष्टिजीव, किसी भी तरहकी दिक्कतके बिना, पुष्टिभक्तिमार्गका अनुसरण कर सकें इसलिये अनेक ग्रंथोकी रचना की. श्रीमहाप्रभुजीके द्वारा लिखित ग्रंथ मुख्यतया इसप्रकार हैं :

(क) ब्रह्मसूत्रभाष्य+, मीमांसासूत्रभाष्य++ तथा गायत्रीमंत्रभाष्य*.

+ ब्रह्मसूत्र = ब्रह्म, जीव, जगत्, आदिके स्वरूप तथा संबंधोके निरूपण करनेवाले वेदान्त(उपनिषद्)के कठिन वचनोंको समझानेकेलिये श्रीवेदव्यासजी द्वारा रचित सूत्रात्मक ग्रंथ.

++ मीमांसासूत्र = अग्निहोत्रादि कर्म, कर्मफल, मंत्र, विधिवाक्य, आदिका

(ख) श्रीभागवतकी सूक्ष्मटीका तथा सुबोधिनी व्याख्या.

(ग) तत्त्वार्थदीपनिबंध, षोडशग्रंथ, पत्रावलंबन आदि.

(घ) श्रीमधुराष्टक, श्रीपुरुषोत्तमसहस्रनाम आदि स्तोत्र.

तिरोधान :

श्रीमहाप्रभुजीके प्राकट्यका प्रयोजन श्रीभागवतके सच्चे अर्थको प्रकट करना भी था परन्तु १८००० श्लोकोंमें फेले हुवे श्रीभागवत-पुराणकी व्याख्या लिखनी और वह भी सतत पर्यटन करते हुवे, यह बहुत मुश्किल कार्य था. इसलिये व्याख्या लिखनेका कार्य धीरे-धीरे चल रहा था. इस दौरान तीन बार श्रीमहाप्रभुजीको स्वधाममें वापस पधारनेकी भगवान्की आज्ञा हुयी. कार्य समाप्त न हुवा होनेपर भी, कलियुगके जीवोंकेलिये इतना ही पर्याप्त है, ऐसा सोचकर श्रीमहाप्रभुजीने श्रीभागवतकी व्याख्याका लेखनकार्य बंद किया. आपने गृहस्थाश्रमका त्याग कर संन्यासाश्रम ग्रहण किया. काशीमें गंगातटपर निर्जल-निराहार बिराजके रथयात्राके दिन वि.सं. १५८७में ५२ वर्षकी वयमें आप गंगाजीमें प्रवेश कर लोकमें तिरोहित हुवे.

ऐसे श्रीमहाप्रभुजीकेलिये बस इतना ही कहा जा सकता है :-

श्रीमद्वल्लभनामधेयसदृशो भावि न भूतोऽस्त्यपि

अर्थ: श्रीमहाप्रभुजीके जैसा न कोई हुवा न है और न होगा.

"इस कठिन कालमें श्रीमहाप्रभुजीके सिवा मेरा उद्धार करनेवाला कोई नहीं है" —ऐसी निष्ठा अपने अंदर जब तक न जागे और श्रीमहाप्रभुजीके ग्रंथोंद्वारा हमें मिलनेवाली सिद्धांत-आज्ञाओंका

निरूपण करनेवाले वेदके पूर्वकाण्ड = कर्मकांडमेंके कठिन वचनोंको समझानेकेलिये महर्षि जैमिनिद्वारा रचित सूत्रात्मक ग्रंथ.

* गायत्रीमंत्र = परब्रह्मके स्वरूपका जिसमें निरूपण तथा स्तुति है और ब्रह्मचर्य-आश्रममें प्रवेश करनेवाले ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यको दीक्षाके रूपमें जो मंत्र देनेमें आता है वह मंत्र. यह मंत्र गायत्री नामके छंदमें बना हुवा होनेसे इसे 'गायत्रीमंत्र' कहतें हैं.

पालन करनेकी तैयारी अपनेमें जब तक न हो तब तक इस मार्गमें आनेपर भी सब निरर्थक ही है. भरोसो दृढ़ इन चरणन केरो.

विशेष अध्ययनके लिये ग्रंथ :—

श्रीगोकुलनाथजीरचित निजवार्ता, घरुवार्ता तथा चौरासी वैष्णवनकी वार्ता.

२. श्रीगोपीनाथजी

श्रीमहाप्रभुजीके बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथजी. आपकी प्रभुसेवा तथा नामस्मरण में तत्परता तो जगप्रसिद्ध है. विद्या तथा व्यवहार में भी आप कुशल थे. बीस वर्षकी वयसे पहले ही आपने सर्व शास्त्रोंका अध्ययन समाप्त कर लिया था. आप बीस वर्षके थे तब श्रीमहाप्रभुजी भूतलका त्याग कर स्वधाममें पधारे. इतनी छोटी वयमें भी आपने सम्प्रदायकी संपूर्ण जवाबदारी सम्हाल ली थी.

श्रीमहाप्रभुने पुष्टिभक्तिमार्गके तत्त्व, सिद्धांत तथा फल पक्षोंको समझानेकेलिये अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है परंतु पुष्टिमार्गीय वैष्णवोंको लौकिक वैदिक कर्तव्योंका पालन करते हुवे अपने दैनिक जीवनको किस तरह सेवा-स्मरणपरायण बनाना चाहिये, इस विषयमें मार्गदर्शनकेलिये आपश्रीने कोई स्वतन्त्र ग्रन्थकी रचना नहीं की. इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्यको श्रीगोपीनाथजीने 'साधनदीपिका' नामक सुंदर लघुग्रंथकी रचनाद्वारा पूर्ण किया.

साधनदीपिका :

प्रभुकी सेवा पुष्टिमार्गीय वैष्णवका एकमात्र धर्म है. जैसे माता पुत्रके लालन-पालनद्वारा अपना स्नेहभाव दरसाती है, या जैसे दास जीवनभर स्वामीकी सेवाद्वारा अपना आदरपूर्वक स्नेहभाव दरसाता है; वैसे प्रभुके प्रति अपने स्नेहभावको हम प्रभुकी सेवाद्वारा प्रकट करतें हैं. स्नेहभावका यदि जाहिरमें प्रदर्शन किया जाता है तो वह भाव ही नहीं रह जाता. जैसे कोई स्त्री अपने पतिकेप्रति अपने स्नेहभावको गांवमें चौड़े-धाड़े जाहिर करती है तो उसे 'भाव' नहीं किंतु 'भवाई' कहना पड़ेगा. वैसे ही जो कोई अपने प्रभुके प्रति स्नेहभावको अथवा सेव्यस्वरूपको ही जाहिरमें प्रदर्शित करता है तो वह भक्ति

+ देखिये पाठ–९ 'सम्प्रदाय'में पृ. ३९.

न रहकर भवाई बन जाती है. इसीलिये श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं कि प्रत्येक पुष्टिमार्गानुयायीको अर्थात् वैष्णवको तथा गुरुको प्रभुसेवा कोई जाने या देखे नहीं इसतरह गुप्त रीतसे करनी चाहिये. जैसे माता अपने बालकको स्तनपान कराते समय उसे साड़ीके पल्लुसे ढांक लेती है, वैसे ही इस मार्गके अनुयायीको अपने भक्तिभाव और भगवत्स्वरूप को अपने लौकिक-वैदिक बाह्य आचरणोंकी ओटमें छिपाकर अपने घरमें सेवा करनी चाहिये. इस तरह सेवा करनेसे ही अपना मन प्रभुमें लग सकता है. अन्यथा अपने हृदयमें रहा हुवा थोड़ा-बहोत भी जो भक्तिभाव होगा वह भी नष्ट हो जायगा. शास्त्रमें भी कहा गया है:

धर्मः क्षरति कीर्तनात्

अर्थ: अपनेद्वारा आचरित धर्मको जो जाहिर करतें हैं तो उसका फल नष्ट हो जाता है.

श्रीमहाप्रभुजीका यह सिद्धांत दीयेके जैसा सीधा और स्पष्ट होनेपर भी उसे जीवन व्यवहारमें कैसे उतारना, इसका ज्ञान करानेकेलिये श्रीगोपीनाथजीने 'साधनदीपिका' ग्रंथकी रचना की. इस ग्रंथमें निरूपित किये हुवे उपदेशोंको यदि हम जीवनमें उतार पायें तो सच्चे अर्थमें पुष्टिमार्गीय वैष्णव बन सकतें हैं. श्रीगोपीनाथजीके कुछ उपदेशोंको अब हम देखेंगे:—

क. सर्वके मूल ऐसे श्रीकृष्णकी सेवा करनी चाहिये.

ख. क्षणमात्र भी यदि प्रभुका स्मरण छूटा तो हम प्रभुसे विमुख हो जायेंगे.

ग. सद्गुरुकी कृपा, सत्संग और श्रीभागवतके अभ्यासके बिना भक्ति सिद्ध नहीं होती.

घ. सद्गुरुमें आदर रखना चाहिये.

ङ. तत्त्वविचार शुद्धि श्रद्धा सत्य दया दान तथा इन्द्रियसंयम पूर्वक भगवत्सेवा-स्मरणमें जो तत्पर होते हैं उन्हें भक्ति जल्दी प्राप्त होती है.

च. वस्तुके दोषोंका चिंतन, इन्द्रियसंयम और प्राप्त वस्तुमें संतोष —यह तीन वैराग्य लानेके उपाय हैं.

छ. हम प्रभुसे विमुख न हो जायें इस बातकी सदा सावधानी रखनी चाहिये.

ज. लौकिक अहंता-ममता भक्तिमें बाधारूप होती हैं.

झ. अवैष्णवका संग नहीं करना चाहिये.

ञ. प्रभुको समर्पित किये हुवे प्रसादसे ही सर्व लौकिक-वैदिक कार्य करने चाहिये.

ट. वैष्णवका अतिथिका दीन-दुःखीका सत्कार करना चाहिये.

ठ. प्रभुकी सेवा तथा सामग्री का प्रदर्शन नहीं करना चाहिये.

ड. जो अपना अत्यंत आत्मीय* वैष्णव हो उसे ही अपने प्रभुके दर्शन कराने चाहिये.

ढ. सेवाके अनवसरमें+ श्रीभागवतका अभ्यास करना चाहिये.

तिरोधान:

श्रीगोपीनाथजी यात्रा करते हुवे (संवत् १५९६में) एक बार श्रीजगन्नाथपुरी पधारे. वहां श्रीजगन्नाथरायजीके दर्शन करते हुवे उन्हींके स्वरूपमें आप लीन हो गये. आप भूतल पर ३० वर्ष बिराजे.

विशेष अध्ययन के लिये ग्रंथ:

श्रीगोकुलनाथजीरचित निजवार्ता, घरुवार्ता तथा चौरासी वैष्णवोंकी वार्ता.

---

* आत्मीय हो किंतु वैष्णव न हो और वैष्णव हो किंतु आत्मीय न हो ऐसे दोनों प्रकारके लोगोंको अपने सेव्यप्रभुके दर्शन नहीं कराये जा सकते हैं.

+ अनवसर = प्रभुसेवा करनेके समयसे अतिरिक्त समयको सांप्रदायिक भाषामें 'अनवसर' कहते हैं.

३. श्रीगुसांईजी

श्रीमहाप्रभुजीके छोटे पुत्र श्रीविट्ठलनाथजी, आपको सम्प्रदायमें 'श्रीगुसांईजी' तथा 'श्रीप्रभुचरण' जैसे नामोंसे भी पुकारा जाता है. आपका जन्म वि.सं. १५७२ (ई.स. १५१६) में चरणाद्रि/चरणाट (चुनार) में हुवा. बचपनसे ही आपमें अलौकिक प्रतिभाके दर्शन होते थे. आप मात्र १५ वर्षके थे तब श्रीमहाप्रभुजी तिरोहित हुवे. ज्येष्ठ भ्राता श्रीगोपीनाथजीके प्रति आपको उत्कट प्रेम एवं आदरभाव होनेसे सब कार्य आप श्रीगोपीनाथजीकी आज्ञा लेकर ही करते.

दिव्य त्याग :

आपको बचपनसे ही संगीत, चित्र, घुड़सवारी जैसी कलाओंका शोख था. प्रभुके जागनेसे पहले आप नियमपूर्वक वीणा बजाते. वीणाके तारपर उंगलियोंके घिसनेसे आपकी उंगलियां कठोर हो गयी थी. यह देख एक दिन पितृचरण श्रीमहाप्रभुजीने कहा कि ऐसी कठोर उंगलियोंके स्पर्शसे प्रभुको श्रम होता है. प्रभुके सुखके सामने सब तुच्छ है. आपने उसी दिनसे वीणा बजाना छोड़ दिया.

एक समय आप श्रीठाकुरजीके शृंगार कर रहे थे. उस समय एक वैष्णव आपकेलिये भेटका द्रव्य लेकर आया. उसी समय किसीने वैष्णवके द्वारा भेंटका द्रव्य लानेकी सूचना आपको दी. इस कारण क्षणभरकेलिये आपका चित्त प्रभुमेंसे हट गया. जिस द्रव्यके आनेकी सूचनामात्रसे मन प्रभुमेंसे हट जाय तो उसके उपयोगसे क्या नहीं होगा! —ऐसा सोच आपने उस समस्त द्रव्यको स्वीकारनेकी ना पाड़ दी.

सर्वसमर्पणके लिये सेवाक्रमका विस्तार :

अपना मार्ग सर्वसमर्पणका है. 'निबंध' ग्रंथमें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं—

धनं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते।
कृष्णार्थं तत् नियुंजीत कृष्णोऽनर्थस्य वारकः॥

अर्थ: धन अपने मनको प्रभुसे दूर ले जानेवाला होनेसे सर्वथा तज देने योग्य है परंतु धनका त्याग करना यदि शक्य न हो तो उसका प्रभुसेवामें उपयोग करना चाहिये. ऐसा करनेसे धनसे होनेवाले अनर्थ प्रभु दूर कर देते हैं.

वैष्णव 'आत्मनिवेदनदीक्षा' द्वारा अपने देह-परिवार-घर-संपत्ति आदि प्रत्येक वस्तुका प्रभुकी सेवाकेलिये प्रभुको निवेदन करदेता है. अब जो वह निवेदित+ सर्व वस्तुका समर्पण++ प्रभुसेवामें नहीं करता तो उसे प्रभुके सामने हाथमें तुलसीपत्र लेकर की हुयी सर्वसमर्पणकी प्रतिज्ञाका पालन न करनेका अपराध लगता है. ब्रह्मसंबंध लेनेवालेको यह अपराध न लगे और वह अपने सेवकधर्मका पालन कर सके, इस हेतुसे श्रीमहाप्रभुजीने सर्वस्व-समर्पणपूर्वक निजगृहमें बिराजमान प्रभुकी सेवाका मार्ग दिखाया. यदि घर-परिवार होगा तो धनकी आवश्यकता भी पड़ेगी और धनका संग्रह तो अनर्थकारी है. तो अब क्या करना? इस समस्याके समाधानकेलिये श्रीगुसांईजीने सेवाके क्रममें भोग-राग-शृंगारके वैभवपूर्ण विनियोगवाली सेवाका प्रकार प्रकटाया कि जिससे अपने घरमें बिराजते सेव्य प्रभुको स्वनिवेदित धनका समर्पण हो सके.

जीवमात्र पर दया :

श्रीगुसांईजीके शिष्य श्रीनारायणदास बादशाहके दीवान थे. एक समय श्रीविट्ठलदास नामके वैष्णवको श्रीनारायणदासने अपने पास नोकरीमें रखा. वैष्णवता जतानकर जो नोकरी मिले तो अपने धर्मको बेचा कहा जायगा ऐसा सोचकर श्रीविट्ठलदासने खुद वैष्णव है,

---

+ निवेदित = ब्रह्मसंबंध लेते समय प्रभुसेवाकेलिये प्रभुको निवेदन करने, जताने, के बाद अपने देह-घर-परिवार-धन आदि सभी वस्तुओंको 'निवेदित', अर्थात् जिनका निवेदन हो चुका है, ऐसा कहा जाता है.

++ समर्पण = निवेदित वस्तुका अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवामें उपयोगमें लानेको 'समर्पण' या 'विनियोग' कहते हैं.

४. श्रीयमुनाजी

भक्तोद्धारके लिये प्राकट्य :

जिन जीवोंमें प्रभुने पुष्टिभक्तिभाव रखा है ऐसे जीवोंके भगवद्भक्तिभावको बढ़ानेकेलिये श्रीयमुनाजीका भूतलपर आगमन है. श्रीमहाप्रभुजी इसीलिये 'श्रीयमुनाष्टक'स्तोत्रमें लिखतें हैं: 'भुवनपावनीम्' अर्थात् श्रीयमुनाजी पृथ्वीको पावन करनेवाली हैं. यहां श्रीमहाप्रभुजीके आशयको स्पष्ट करते हुवे श्रीहरिरायचरण आज्ञा करते हैं कि भुवन = पृथ्वीको पावन करनेवाली अर्थात् पुष्टिजीवोंके देहरूप भुवनको पावन करनेवाली श्रीयमुनाजी हैं. ऐसे पवित्र भक्तोंके मनमें भगवद्भाव स्थापित करनेकेलिये ही श्रीयमुनाजी भूतलपर पधारी हैं. इसलिये कोई अज्ञानी पुष्टिजीव भी यदि लौकिक या पारलौकिक कामना रखे बिना श्रद्धापूर्वक श्रीयमुनाजलका पान करता है तो अनंत गुणोंवाली श्रीयमुनाजी उसे जरूर श्रीकृष्णकी भक्तिका दान करती हैं.

माहात्म्य :

श्रीकृष्णावतारके समय प्रकट भगवान्की अनेक अलौकिक लीलाओंकी श्रीयमुनाजी साक्षी हैं. उस समय किये गये श्रीयमुनाजलमें स्नान-पान रूपी विहारात्मक प्रभुस्पर्शके कारण, भगवत्कृपावाले भक्तको तो श्रीयमुनाजलके स्पर्शसे साक्षात् श्रीकृष्णके स्पर्शकी ही अनुभूति होती है. प्रभुके चरणके स्पर्शके कारण यमुनातटकी रज भी इतनी माहात्म्यवाली है कि उस रजके स्पर्शसे भी अपने अंदर रहे हुवे भक्तिविरोधी सारे भाव दूर हो जाते हैं.

ऐश्वर्य :

श्रीयमुनाजी श्रीकृष्णके समान गुणधर्मोंवाली हैं. इसलिये श्रीयमुनाजीमें रहे हुवे पुष्टिभक्तिमें सहायक ऐसे ऐश्वर्य (माहात्म्य, शक्ति)का श्रीमहाप्रभुजीने 'श्रीयमुनाष्टक'स्तोत्रमें वर्णन किया है:—

१. श्रीयमुनाजी हर प्रकारकी पुष्टिभक्तिमार्गीय सिद्धिओंको देनेवाली हैं.

२. श्रीयमुनाजी भगवान्में भक्तिको बढ़ानेवाली हैं.

३. पुष्टिजीव और भगवान् के संबंधके बीच आते सब विघ्नोंको श्रीयमुनाजी दूर करती हैं.

४. श्रीयमुनाजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण के गुणधर्म समान होनेके कारण श्रीयमुनाजी प्रभुके साथ जीवका संबंध सरलतासे जोड़ देती हैं.

५. कलिकालके कारण प्रभुके प्रिय जीवोंमें प्रविष्ट हुवे दोषोंको श्रीयमुनाजी दूर करती हैं.

६. श्रीयमुनाजीके सेवनसे व्रजभक्तोंको जैसे प्रभुकी प्रियता प्राप्त हुई थी वैसे ही स्वप्रभुकी प्रियता आधुनिक पुष्टिजीव भी आपके यथा योग्य सेवनद्वारा प्राप्त कर सकते हैं.

७. श्रीयमुनाजी पुष्टिजीवोंके देहको सेवामें उपयोगी हो पाये ऐसा नूतन बना देनेवाली हैं.

८. श्रीयमुनाजीका स्पर्श प्रभुके स्पर्शके समान है.

जीवमें भगवान्ने पुष्टिभक्तिभावका स्थापन किया होनेपर भी जबतक उस जीवके भक्तिभावको प्रकट करनेकी कृपा-इच्छा भगवान् नहीं करते तबतक जीवमें रहा हुवा भक्ति-भाव प्रकट नहीं हो पाता. ऐसी कृपा भगवान् कभी स्वयं करतें हैं अथवा गुरु, भक्त अथवा श्रीयमुनाजी द्वारा करवातें हैं. जैसे बालक माताको रिझा कर पिताकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेता है, वैसे ही पुष्टिजीवोंके माता समान श्रीयमुनाजीको रिझा कर परमपिता परमात्मा श्रीकृष्णकी प्रसन्नता प्राप्त की जा सकती है. श्रीआचार्यचरण 'श्रीयमुनाष्टक'स्तोत्रमें स्तुति करते हुवे लिखते हैं:

अनन्तगुणभूषिते शिवविरञ्चिदेवस्तुते।
घनाघननिभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे॥
विशुद्धमथुरातटे सकलगोपगोपीवृते।
कृपाजलधिसंश्रिते मम मनःसुखं भावय॥

अर्थ: श्रीयमुनाजी अनंत गुणोंवाली हैं. शिव, ब्रह्मा आदि देवता भी श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे आपकी स्तुति करतें हैं. वर्षाऋतुमें घिरते बादलों जैसी घनश्याम श्रीयमुनाजी अपने तटपर तपश्चर्या करनेवाले ध्रुव-पराशर जैसे तपस्विओंको हंमेशा मनोवांछित फल

देनेवाली हैं. पवित्र मथुरा नगरी जिनके तटपर बसी हुयी है ऐसे श्रीयमुनाजी सभी व्रजभक्तोंसे घिरे हुवे रहते हैं. कृपासागर श्रीकृष्णको मिलनेवाली हे श्रीयमुनाजी! हमारे मनको सुख (कृष्णभक्ति) हो ऐसा करो!

विशेष अध्ययनके लिये ग्रंथ:

षोडशग्रंथमेंसे श्रीयमुनाष्टक ग्रंथ.

५. श्रीकृष्ण

आसुरी जीवोंको प्रभुस्वरूपका ज्ञान नहीं होता है:

जिन जीवोंको भगवान् भक्ति अथवा मुक्ति+ देनेकी इच्छा नहीं रखते, ऐसे जीव 'आसुरी सृष्टिके जीव' या 'प्रवाही सृष्टिके जीव' कहे जाते हैं. जबकि जिस जीवको भगवान् भक्ति अथवा मुक्ति देना चाहते हैं वह 'दैवी सृष्टिका जीव' कहा जाता है. भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें आज्ञा करते हैं:—

> आसुरी सृष्टिके जीव मेरे परब्रह्म पुरुषोत्तम स्वरूपको जान नहीं पाते. मनुष्यदेहके रूपमें मेरा प्राकट्य होनेसे वे मुझे केवल मनुष्य या महापुरुष समझ लेते हैं. मेरे स्वरूपको जानते न होनेसे हि मेरी शक्ति अविद्या-माया++के कारण वे अज्ञानी रह जाते हैं, दुष्ट कर्म में रत रहनेवाले ऐसे मूढ़ और अधम आसुरी लोग मेरी शरण नहीं ले पाते.

प्रभु अज्ञान दूर करें तब प्रभुस्वरूपका ज्ञान होता है:

श्रीकृष्णका स्वरूप और चरित्र ही ऐसा है कि उसे समझनेमें आसुरी जीव तो क्या, बड़े-बड़े ज्ञानी तथा देवराज इन्द्र जैसे देवता भी भ्रमित हो जाते हैं. भगवान्का स्वरूप क्यों समझमें नहीं आता? भगवान् गीतामें उत्तर देते हैं:

> मैं जिन जीवोंको अपने स्वरूपका ज्ञान कराना नहीं चाहता उनकी बुद्धिको मेरी अविद्याशक्तिसे ढंक देता हूं. इसलिये ऐसे अज्ञानी जीव मेरे स्वरूपको जान नहीं पाते.

आंखोंके आगेसे जैसे-जैसे और जीतने बादल हटते जाते हैं वैसे-वैसे और उतना सूर्य दिखाई देने लगता है. भगवान् भी जिस जीवका जितना अज्ञान दूर करते हैं, उतना ही स्वरूप

+मुक्ति: जन्म-मरणके चक्करमेंसे छूटकारेको 'मुक्ति' कहते हैं.

++माया: भगवान्की एक शक्ति, जिसके कारण जीवको अज्ञान होता है.

वह भगवान्‌का जान पाता है.

श्रीनंदरायजी तथा सब व्रजवासी हर साल इन्द्रकी पूजा करते थे. जिससे इन्द्रको थोड़ा अभिमान आ गया. भगवान्‌ने सोचा कि मैं देवाधिदेव व्रजमें साक्षात् विराज रहा हूं और व्रजवासी अन्याश्रय कर रहे हैं! उनका अन्याश्रय तो छुड़ाना ही होगा!! यह सोच इन्द्रपूजाकी तैयारी कर रहे सबको श्रीकृष्णने आज्ञा दी कि हम वन और पर्वत में रहनेवाले हैं. हमारा वास्तविक धन तो गोधन ही है. हमारा निर्वाह भी वन तथा गायों पर ही निर्भर है. यदि पर्वत और वन न हों तो वर्षा कहांसे आयेगी! इसलिये यदि पूजा करनी हो तो गोवर्धन पर्वतकी करो. श्रीकृष्णकी आज्ञा मिलते ही गोवर्धनपूजाकी तैयारियां होने लगी. यह समाचार मिलते ही इन्द्र लालपीला हो गया. अपने अनुचर मेघोंको उसने आदेश दिया :—

> में ही ईश्वर हुं. एक सामान्य मनुष्य ऐसे अभिमानी श्रीकृष्णकी बातमें आ कर यह व्रजवासी मेरा अपमान कर रहें हैं. नाश कर दो सारे व्रजका!

इन्द्रका आदेश मिलते ही मेघ तो घोर गर्जनाओंके साथ व्रजपर मूसलधार बरसात बरसाने लगे. पूरा व्रज जलमें डूबने लग गया. असहाय व्रजवासी दीनानाथ भगवान् श्रीकृष्णके शरणमें जाकर व्रजको बचानेकी प्रार्थना करने लगे. प्रभुने सोचा कि अब व्रजवासिओंका अन्याश्रय पूर्णरूपेण छूट गया है. अब उनका अनन्याश्रय दृढ़ हुवा है. तब शरणागतवत्सल भगवान्‌ने व्रजवासिओंको बचाने तथा इन्द्रके गर्वको तोड़नेकेलिये; जैसे कोई बालक बिना मेहनतके एक ही हाथसे छत्री उठा लेता है वैसे ही, विशाल गोवर्धन पर्वत एक हाथपर उठा लिया. सब व्रजवासी अपनी गाय, बालक; संपत्ति आदि लेकर पर्वतके नीचे आ गये. इन्द्रने सात दिन तक जल बरसाया परंतु श्रीकृष्णकी छत्रछायामें व्रज सुरक्षित था. अंतमें इन्द्रको श्रीकृष्णके स्वरूपका भान हुवा. उसका अभिमान दूर हुवा. उसने प्रभुके चरणस्पर्श कर अपने दुष्कर्मकी क्षमा मांगी. भगवान्‌ने इन्द्रको क्षमा करते हुवे आज्ञा की :—

> क्षुद्र ऐश्वर्य और लक्ष्मी (धन-संपत्ति) के अहंकारसे अंध बना हुवा व्यक्ति यह नहीं देख पाता कि मैं (श्रीकृष्ण) शिक्षा करनेकेलिये दंड लेकर खड़ा हुं; परंतु जिसके ऊपर मेरी कृपा करनेकी इच्छा होती है उसकी लक्ष्मी (प्रतिष्ठा, धन-संपत्ति वगैरह) धीरे-धीरे हर लेता हूं. तेरा गर्व दूर हुवा. अब अभिमान रखे बिना मेरी आज्ञाके अनुसार स्वर्ग-लोकका शासन कर.

इस तरह हमने देखा कि दैवीजीवोंको भी कभी लोभ, मोह, ईर्ष्या, अभिमान, क्रोध, काम जैसे आसुरी भावोंके आवेशके कारण भगवान्‌के स्वरूप और लीलाका ज्ञान नहीं हो पाता. भगवान् गीतामें आज्ञा करते हैं :—

> हजारो मनुष्योंमें कोई मनुष्य ही सिद्धिकी प्राप्तिकेलिये प्रयत्न करते हैं. और प्रयत्न करनेवालोंमेंसे भी कोई ही मेरे सच्चे स्वरूपको जान सकता है.

प्रभुस्वरूपका ज्ञान और प्राप्ति भक्तिसे :

हम पुराणग्रंथोंमें अनेक स्थलोंपर देख सकते हैं कि ऋषि-मुनि असंख्य वर्षोंतक ज्ञानसाधना तथा तपश्चर्या करनेपर भी प्रभुस्वरूपको जान या प्राप्त नहीं कर पाते.

व्रजवासिओंने प्रभुप्राप्तिकेलिये किसी भी प्रकारके यज्ञकर्म अथवा दान-व्रत-तप आदि साधन नहीं किये थे; फिर भी भगवान् उनके बीच साक्षात् अवतीर्ण हुवे; ऐसा क्यों? भगवान् श्रीकृष्ण सभी तरहसे स्वतन्त्र हैं. ब्रह्मा-शिव-इन्द्र आदि देवताओंकी तरह श्रीकृष्ण किसी भी यज्ञ-व्रत-मंत्र आदि साधनोंसे दर्शन देने या फल देने केलिये बंधे हुवे नहीं हैं. इसलिये किसी भी प्रकारके साधनोंका अभिमान रखकर यदि श्रीकृष्णको जानने या पाने का प्रयत्न कोई करना चाहे तो ऐसे प्रयत्न सफल नहीं होते. यदि श्रीकृष्णकी कृपा हो तो व्रजवासिओंकी तरह किसीभी प्रकारके साधनोंके बिना साक्षात् श्रीकृष्ण तथा उनके बारेमें पुष्टिभक्ति

भी मिल सकती है.

"किसी तरहके उपायसे मैं कुछ प्राप्त कर सकता हूं" इस प्रकारके मनोभावको 'साधनाभिमान' कहा जाता है. तीर्थ, मंत्र, कर्म, ज्ञान, उपासना, व्रत आदिको 'साधन' कहते हैं. शास्त्रोंमें बताये हुवे ऐसे किसी भी साधनसे हम प्रभुको जान या पा नहीं सकते. प्रभुकृपासे प्राप्त अनन्य भक्तिसे ही प्रभुको जान या पा सकते हैं. भगवान् गीतामें आज्ञा करते हैं:—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्यो अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

अर्थ: हे अर्जुन! मेरे दर्शन जैसे तुझे हुवे वैसे दर्शन वेद, तप, दान तथा यज्ञ आदि किसीभी उपायोंसे होने शक्य नहीं. मात्र अनन्य भक्तिसे ही इस प्रकारका ज्ञान एवं दर्शन शक्य है; और मेरेमें प्रवेश (सायुज्यमुक्ति) भी.

यहां प्रश्न होता है कि प्रभुका स्वरूप कैसा है.

भगवान्का स्वरूप:

परस्पर विरुद्धधर्मोंके भगवान् आश्रय हैं, ऐसा वर्णन शास्त्रोंमें मिलता है. परस्पर विरुद्ध गुण-धर्म जिसमें एकसाथ रहते हों उसे 'विरुद्धधर्माश्रय' कहा जाता है. उदा. देश-कालमें सीमित जड़-जगत्की विभिन्न वस्तुओंमें ब्रह्म सत्(सत्ता)के रूपमें प्रकट है; और अणु परिमाणवाले जीवोंमें चित्(चैतन्य)के रूपमें प्रकट है. अन्तर्यामीमें आनन्दके रूपमें प्रकट है. अतः देश-कालमें सीमित रूपोंमें प्रकट होनेपर भी ब्रह्म व्यापक है. भगवान् निजस्वरूप बताते हुवे गीतामें आज्ञा करते हैं:—

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत् स्यात् मया भूतं चराचरम्॥

अर्थ: हे अर्जुन! जड़ तथा जीव मात्रकी उत्पत्तिका जो कुछ भी कारण है वह मैं ही हूं. ऐसा कोई जड़ या जीव पदार्थ

नहीं कि जिसमें मैं न होऊं.

भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वरूप हुवे हैं, यह बात इस वचनसे समझमें आती है. यहां एक प्रश्न उठता है कि जैसे वायु सब जगह होनेसे उसे 'व्यापक' कहा जाता है और व्यापक होनेके कारण उसका कोई आकार भी नहीं होता है, वैसे ही भगवान् भी व्यापक हैं, तो क्या भगवान् भी आकारवाले नहीं होते हैं? दूसरे शब्दोंमें कहें तो क्या भगवान् निराकार हैं? भगवान्ने इस प्रश्नका उत्तर गीतामें दिया है. जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारणरूप+ अपने अव्यक्त* व्यापक अक्षरब्रह्म++ रूपका वर्णन करके भगवान् अपने साकार स्वरूपका भी निरूपण करते हैं:—

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया

अर्थ: (ज्ञानमार्गियोंकी जिसमें मुक्ति होती है ऐसे भगवद्धामरूप अक्षरब्रह्मसे भी श्रेष्ठ) पर (सर्वोच्च) पुरुष (भगवान् श्रीकृष्ण) तो अनन्य भक्तिसे ही प्राप्त होते हैं.

नाम अनेक श्रीकृष्ण एक:

गीताजीके इन वचनोंसे श्रीकृष्णकी सर्वरूपता तथा सर्वविलक्षणता समझमें आती है. वेद-स्मृति-भागवत आदि शास्त्रोंमें एक श्रीकृष्णको ही परब्रह्म परमेश्वर परमात्मा भगवान् अंतर्यामी जगदीश आदि भिन्न-भिन्न नामोंसे वर्णित किया गया है. इतना ही नहीं, पुराणोंमें

+ कारण: किसी वस्तु/कार्य की उत्पत्तिकेलिये जो नियततया आवश्यक हो उसे 'कारण' कहते हैं. उदा. घड़ा बनानेकेलिये मिट्टी, चक्का-दंडा आदि जो आवश्यक होते हैं, उन्हें 'कारण' कहा जाता है.

* अव्यक्त: साधारण मनुष्य जिसे देखकर अनुभव न कर पाये उसे 'अव्यक्त' कहते हैं; अर्थात् जो व्यक्त (दृष्ट अथवा प्रकट) न हो ऐसा.

++ अक्षरब्रह्म श्रीकृष्णका धाम है, ज्ञानिओंका उपास्य तथा मुक्तिस्थानरूप है. जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण है. अक्षरब्रह्ममें परब्रह्मके सत्ता चैतन्य तथा आनन्द रूप धर्म प्रकट हैं.

भी जिन-जिन देवी-देवताओंका अथवा अवतारोंका परतत्त्वकेरूपमें वर्णन किया गया है, उसे भी तत्त्वदृष्टिसे श्रीकृष्णका ही वर्णन समझना चाहिये. क्योंकि श्रीकृष्ण खुद ही उन-उन देवी-देवताओंका रूप धारण कर लीला कर रहे हैं. शास्त्रमें ये सब देवी-देवता श्रीकृष्णके अंगरूप माने गये हैं. श्रीभागवतमें कहा है:—

सर्वदेवमयो हरिः

अर्थ: श्रीकृष्ण सर्वदेवमय हैं. अर्थात् सब देव भगवान् श्रीकृष्णके अंग हैं.

जैसे किसी व्यक्तिके हाथ आंख या नाक आदि अंगोंकी प्रशंसा की जाती हो तो ऐसी प्रशंसा उस व्यक्तिकी ही प्रशंसा मानी जाती है. इसी तरह सभी देवी-देवता भगवान्के ही अंग होनेसे; उनका परतत्त्वके रूपमें किया जाता वर्णन भी अंतमें तो श्रीकृष्णका ही वर्णन होता है.

प्रभुके विविध नाम-रूपोंका रहस्य:

'परमात्मा' या 'भगवान्' आदि अलग-अलग नामोंसे जो श्रीकृष्णका निरूपण शास्त्रोंमें दिखलायी देता है उसका कारण समझना चाहिये. जैसे कोई एक ही व्यक्ति अपने बच्चोंकेलिये पिता है, नोकरकेलिये मालिक है, अपने परिवारकेलिये प्रमुख है, ऑफिसमें ऑफिसर भी है. इस उदाहरणसे समझा जा सकता है कि व्यक्तिके विभिन्न कार्यों तथा संबंधों के कारण उसके संबोधन (बुलानेके या पेहचाननेके नाम) भी अलग-अलग हो जाते हैं; परंतु इन विभिन्न नामोंके कारण व्यक्ति नहीं बदल जाता. इसी तरह ब्रह्मका जगत्के उत्पत्तिकर्ता+, स्थितिकर्ता+ तथा प्रलयकर्ता+ रूपमें जहां निरूपण हुवा है वहां उसे

+ उत्पत्तिकर्ता = उत्पन्न करनेवाला. स्थितिकर्ता = जगत्का पालन करनेवाला. प्रलयकर्ता = जगत्को स्वयंमें समा लेनेवाला

'ब्रह्म' नामसे पुकारा जा रहा है. भक्ति करनेके उपदेशार्थ उसे 'भगवान्' 'पुरुषोत्तम' या. 'श्रीकृष्ण' जैसे नामोंसे संबोधित किया जाता है. सृष्टिका नियमन उसके भीतर रह कर करते होनेसे भगवान्को 'अंतर्यामी' या 'पुरुष'++ कहा जाता है. जब कोई कार्य करनेकेलिये वे किसी रूपमें पृथ्वीपर आते हैं तो उनको नृसिंह-वामन-राम आदि 'अवतार' के रूपमें संबोधित किया जाता है. इतने सब अलग-अलग नामोंके बावजूद अखंड पूर्ण श्रीकृष्ण एक ही हैं.

प्रभुप्राकट्यके प्रयोजन:

पृथ्वीपर जब दुष्ट अधर्मी लोगोंका त्रास बढ़ जाता है तब उनका विनाश करनेकेलिये कभी भगवान् अवतार धारण करते हैं. अधर्मके जोरके बढ़ जानेके कारण जब धर्मपर संकट आ पड़ता है तब धर्मकी स्थापनाकेलिये भगवान् अवतार धारण करते हैं. कभी भगवान् भक्तोंके उद्धारकेलिये भी पृथ्वीपर अवतीर्ण होते हैं.

अवतारके प्रकार:

अक्सर राजा अपना काम मंत्री, दूत, सिपाई आदि कर्मचारिओं द्वारा करवा लेते थे; परंतु कभी कोई आवश्यक कार्य आ पड़ा हो तो ऐसे कार्य राजा स्वयं भी करते थे. उसी तरह भगवान् भी दुष्ट लोगोंके संहारके या धर्मस्थापन जैसे कार्य अपने आवेशअवतारद्वारा या अंशावतारद्वारा सम्पन्न करा लेते हैं. परंतु अपने स्वरूपानंदके दानद्वारा भक्तोंके उद्धारकेलिये तो भगवान् स्वयं ही अवतार धारण करते हैं.'भगवान्' यानि: जिनमें ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान और वैराग्य ये छह गुण असीम मात्रामें हों.

++ अन्तर्यामि: जड़ या जीव सृष्टिके भीतर व्यष्टि या समष्टि के रूपमें बिराजकर जो उन-उन रूपोंका नियमन करता है ऐसे परमात्मा पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके प्रकट सत्-चित्-आनन्द अंश रूपको 'अंतर्यामी' कहा जाता है.

भगवान्‌का यह लक्षण, भागवत् शास्त्रके अनुसार, श्रीकृष्ण पर ही खरा उतरता है. अतः भगवान तो श्रीकृष्ण ही हैं. अलग-अलग प्रकारसे भगवान् पृथ्वीपर अवतार लेते हैं. यहां अवतारके प्रकारोंको समझलेना चाहिये :—

१. पूर्णावतार— जब भगवान् श्रीकृष्ण स्वयंकी संपूर्ण शक्तिओंके साथ पृथ्वीपर प्रकट होते हैं तब भगवान्‌के ऐसे अवतारको 'पूर्णावतार' कहा जाता है. कृष्णावतार ही एक पूर्णावतार है.

२. अंशावतार— भगवान् स्वयं न अवतीर्ण हो कर जब अपने किसी गुणको पृथ्वीपर प्रकट करते हैं तो तब वह भगवान्‌के अंश कला या गुण का अवतार माना जाता है. जैसे सर्व पुराणोंके रचयिता तथा वेदोंके विभागकर्ता वेदव्यासजी भगवान्‌के ज्ञानगुणके अवतार हैं.

३. आवेशावतार— कोई विशेष कार्य करने केलिये भगवान् जब किसी जीवके देहमें प्रवेश करते हैं, तब भगवान्‌का 'आवेशावतार' कहा जाता है. इस प्रकारका आवेश उस कार्यको सम्पन्न करनेभरको होता है. परशुरामजी श्रीकृष्णके ऐसे आवेशावतार हैं.

कुछ अज्ञानी लोग श्रीकृष्ण भगवान्‌को एक साधारण अवतारमात्र समझते हैं. इससे भी बढ़े-चढ़े कुछ मूढ़ लोग तो श्रीकृष्णको मात्र युगपुरुष, महापुरुष अथवा योगकी सिद्धियां जिन्हें प्राप्त हुयी थी ऐसे योगेश्वर मात्र मान लेते हैं. परब्रह्म श्रीकृष्णके सच्चे स्वरूपको न जाननेवाले ऐसे सभी लोगोंको श्रीकृष्ण आसुरी जीवके रूपमें गिनाते हैं. वस्तुतः तो जैसे कोई अभिनेता रंगमंचपर विभिन्न प्रकारके वेश धारण करके अभिनय करता है, ऐसे ही स्वयंकी क्रीड़ाकेलिये बनाये गये इस जगत् रूपी रंगमंचपर श्रीकृष्ण ही वराह, मत्स्य या राम आदि रूप धारण करके अवतीर्ण हुवे हैं. इसलिये सभी अवतारोंका वर्णन करनेके बाद श्रीभागवतमें कहा गया है :—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

अर्थः ये सभी भगवान्‌के आवेश अंश या कला रूपी अवतार

हैं जबकि श्रीकृष्ण तो स्वयं (अवतारी+) भगवान् हैं.

निष्कर्ष :

भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य जन्म एवं कर्मों के श्रवण-कीर्तन-स्मरणद्वारा भक्त संसारसागरके उस पार जा सकता है. अतएव भगवान् आज्ञा करते हैं :—

जन्म कर्म च मे दिव्यं एवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

अर्थः हे अर्जुन! जो मेरे जन्म (अवतार)और कर्म (लीला) को तत्त्वतः दिव्य (अलौकिक*, अप्राकृत++) मानते हैं, वे मुझे पा सकते हैं, उनका दूसरा जन्म होता नहीं.

विशेष अध्ययनके लिये ग्रंथ :

षोडशग्रंथोके अन्तर्गत सिद्धांतमुक्तावली.
श्रीलालूभट्टजीकृत प्रमेयरत्नार्णवके नौमेंसे मूलरूपविवेक.
श्रीगट्टुलालाजीकृत वेदांतचिन्तामणि.

+ अवतारी : राम, वामन या नरसिंह आदि जिसके अवतार हैं, ऐसे सर्वमूलरूप श्रीकृष्णको 'अवतारी' कहा जाता है.

* अलौकिक : जो इस लोक और परलोक से भी श्रेष्ठ हो, ऐसी प्रभुके स्वरूप, लीला, गुणगान या सेवा आदिको पुष्टिमार्गमें 'अलौकिक' कहा जाता है.

++ अप्राकृत : इस लोक और परलोक के जड़ पदार्थोंका निर्माण भगवान्‌ने प्रकृतिके जिन सत्त्व-रज-तम गुणोंद्वारा किया है, ऐसे गुण जिसमें न हों अथवा उन गुणोंद्वारा जो निर्मित न हो उसे 'अप्राकृत' कहा जाता है.

६. जीव

हमने देखा कि ब्रह्ममें सत्ता, चैतन्य तथा आनन्द रूप धर्म होते हैं. ब्रह्मके सत्(सत्ता) अंशसे जड़ सृष्टि प्रकट हुई है. इसके विपरीत ब्रह्म जहां स्वयंके केवल आनन्द धर्मको छिपा कर सत्-चित् धर्मोंसे प्रकट होता है, तब ब्रह्मके उस प्रकट रूपको 'जीव' कहा जाता है. सामान्य व्यवहारमें जीवकी पहेचान हम श्वसनक्रियाद्वारा कर सकते हैं. इससे श्वासोच्छ्वासकी क्रिया जिनमें चलती हो ऐसे अचल वृक्ष, रेंगने-तैरने-उड़ने-चलनेवाले कीट, सरीसृप, कछुआ-मछली, पक्षी, पशु, मनुष्य आदिको 'जीवसृष्टि' कहा जाता है.

ब्रह्म ही जगत्रूप बना है फिर भी जगत्की ब्रह्मरूपता दिखलायी नहीं देती. ऐसे ही ब्रह्म ही जीवरूप भी बना है; अतएव जीव ब्रह्मात्मक है तथा ब्रह्मका अंश भी. ऐसा होनेपर भी जीवकी ब्रह्मरूपता अनुभूत नहीं होती. ऐसा होनेका कारण यह है कि जीवमें ब्रह्मके मात्र सत्-चित् धर्म ही प्रकट हैं. आनन्द धर्म छिपा हुवा ही रहता है. इसी कारणसे जीवकी ब्रह्मरूपता या ब्रह्मात्मकता अनुभूत नहीं होती. ब्रह्मके आनन्द धर्मके छिपे (तिरोहित) रहनेके कारण ही उसे शरीर मिलता है तथा जन्म-मरणके चक्रमें फंसता है. इसी कारणवश उसे मैं और मेरा, सुख और दुःख आदिका अनुभव होता है. इसी बातको यदि सरलतासे समझनी हो तो यों समझा जा सकता है:—

राजाके दरबारमें काम करते कर्मचारीको जबतक राजा स्वयंके पास रखता है तबतक उसे दरबारी वेशभूषा या सन्मान आदि मिलते हैं. राजा, परंतु, उसकी पदवी खोंस लेता है तो उसे वह सन्मान आदि मिलने बंद हो जाते हैं. पदवी छिन जानेके कारण वह निस्तेज, निर्बल, असमर्थ एवं असंतुष्ट हो जाता है. और फिर कभी खुश होकर राजा उसे दरबारमें स्थान दे देता है तो पेहले जैसा ही वह दरबारी बन जाता है. इसी तरह

सृष्टि करनेकी इच्छा होते ही; जैसे अग्निमेंसे तिनके बाहर निकलते हैं वैसे ही अक्षरब्रह्ममेंसे असंख्य जीव छुट्टे पड़े हैं. अग्निमेंसे बाहर निकल कर तिनके जैसे थोड़ी देरतक अग्निकी चमक दिखलाते हैं, ऐसे ही अक्षरब्रह्ममेंसे छुट्टे पड़नेवाले जीव-अंशोमें भी पहले तो ब्रह्मका आनन्द धर्म प्रकट रहता है. परंतु भगवान् जब स्वयंमेंसे छुट्टे पड़नेवाले अंश-जीवोंमेंसे आनन्द धर्मको छिपा लेते हैं तब राजाद्वारा पदभ्रष्ट किये जानेवाले दरबारी जैसे निस्तेज, निर्बल, पराधीन, दुःखी दिखलायी देने लगता है वैसे ही जीव भी पराधीन-हीन, असमर्थ-दुःखी, देहादिमें अहंता-ममतावाला, अज्ञानी, भ्रमित, विषयोंमें आसक्त बन जाता है. जब परमात्मा जीवपर कृपा करता है तब वह स्वयंके मूल स्वरूपको दोबारा पा लेता है.

जीवकी तीन अवस्था:

जीवकी तीन अवस्था होती हैं:(१) शुद्ध (२) बद्ध और (३) मुक्त.

शुद्ध: ब्रह्मसे छुट्टे पड़नेवाले जीवमें आनन्द अंशके तिरोहित होनेके बाद जबतक जीवके साथ अविद्याका* संबंध नहीं जुड़ता तबतक जीवको 'शुद्धजीव' कहा जाता है.

बद्ध: अविद्याके साथ संबंध जुड़नेपर जीव अहंता-ममता (मैं-मेरा) वाला बन जाता है और जन्म-मरणके बंधनमें बंध जाता है. इस अवस्थामें जीवको 'बद्ध' या 'संसारी' कहा जाता है.

मुक्त: जब जीव सत्संग आदिद्वारा स्वयंका अज्ञान दूर कर, प्रभुके धामकी प्राप्ति आदि रूपोंमें मुक्ति पा लेता है तब जीवको 'मुक्त' कहा जाता है.

जीवके प्रकार:

हमने समझा कि भगवान्ने यह समग्र जड़-जीवात्मक जगत् स्वयंकी क्रीड़ाकेलिये बनाया है. क्रीडामें विविधता लानेकेलिये

+ अविद्या: भगवान्की एक शक्ति जिसके कारण जीवको अज्ञान होता है और वह स्वयंके सच्चे स्वरूपको भूल देह, इन्द्रिय, प्राण और अंतःकरणको ही जीव समझने लगता है.

भगवान्ने जीवोंको अलग-अलग स्वभावोंवाला बनाया है. मुख्यतया जीवोंके तीन प्रकार हैं: (१) प्रवाहिजीव, (२) मर्यादाजीव और (३) पुष्टिजीव. प्रवाहिजीव प्रवाहमार्गमें रुचिवाले हो कर उस मार्गका अनुसरण करते हैं. मर्यादाजीव मर्यादामार्गमें रुचिवाले होकर उस मार्गका अनुसरण करते हैं. पुष्टिजीव पुष्टिमार्गमें रुचिवाले होकर पुष्टिमार्गका अनुसरण करते हैं.

जीवोंकी पहेचान:

अलग-अलग स्वभाववाले लोगोंके मूल स्वभावको जैसे उनके बाह्य आचरणोंसे परखा जा सकता है वैसे ही जीवोंके भी मूल = प्रभुद्वारा निर्मित स्वभावको उनकी रुचि तथा आचरण से, सामान्यतया, परखा जा सकता है. कैसे स्वभावके जीवोंकी कैसी रुचि होती है तथा वे किस प्रकारका आचरण करते होते हैं, उसका सविस्तर विवेचन गीता, भागवत आदि शास्त्रोमां मिल जाता है.

प्रवाहीजीव: क्रोध, लालच, अभिमान, अज्ञान, ईर्ष्या, अपवित्रता, विलासिता, परपीड़ा, क्रूरता आदि लक्षणोंवाले होते हैं. यह प्रवाहिजीवोंकी सामान्य रीति दिखलायी देती है परंतु प्रभुके सेवा-स्मरणादिसे विमुखता यह प्रवाहिजीवोंकी खासियत होती है.

मर्यादाजीव: इन्हें लौकिक विषयोंमें रुचि नहीं होती. दान दया तप पवित्रता प्रसन्नता आदि गुणोवाले होते हैं. विशेष करके ये जीव मोक्ष पानेकेलिये शास्त्रोंमें वर्णित कर्म-ज्ञान-उपासनाके मार्गोंमें रुचिवाले होते हैं.

पुष्टिजीव: पुष्टिजीवोंको लौकिक सुख पारलौकिक स्वर्ग या मुक्ति में रुचि होती नहीं. मुक्ति पानेसे भी अधिक प्रिय इन्हें श्रीकृष्णकी सेवा लगती है. श्रीकृष्णकी सेवामें रुचि होनेके कारण इनकी निष्ठा+भी श्रीकृष्णसेवामें ही होती है.

ऊपर समझाये गये लक्षण, सामान्य रीतिसे, उन-उन जीवोंमें

+ निष्ठा: किसी भी कार्यमें उसकी शुरुआतसे अंत तक लगे रहना.

दिखलायी देते हैं. कभी-कभी संग आदिके कारण प्रवाहिजीवोंमें भी मर्यादाजीवों या पुष्टिजीवों के लक्षण दिखलायी देते हैं. इसी तरह कभी-कभी पुष्टि या मर्यादा जीवोंमें भी प्रवाहिजीवोंके लक्षण देखनेमें आ जाते हैं. संग आदिके कारणसे एक-दूजेमें देखनेमें आते एक-दूजेके लक्षणको 'आवेश' कहा जाता है. पुष्टिजीवमें कदाचित् प्रवाही आवेश आ भी जाये तो इतनेमात्रसे उसका मूल स्वभाव बदल नहीं जाता. उसी तरह यदि प्रवाहिजीवमें भी पुष्टि या मर्यादा का आवेश कभी आ भी जाय तो इतनेमात्रसे प्रवाहिजीव मर्यादा या पुष्टि का जीव नहीं बन जाता.

ऐसे तीन प्रकारके जीवोंके स्वभाव-कृति-फल आदिको अलग-अलग जान लेनेसे अपने अनेक संशय निवृत्त हो जाते हैं.

विशेष अध्ययनार्थ ग्रंथ:

षोडशग्रंथके अन्तर्गत पुष्टिप्रवाहमर्यादा.
श्रीगुसांईजीरचित भक्तिहंस.
श्रीलालूभट्टजीकृत प्रमेयरत्नार्णवमें जीवविवेक.

७. जगत

ब्रह्म-जीव-जगत्का तात्त्विक स्वरूप, सृष्टिकी उत्पत्ति, मोक्ष या ईश्वरप्राप्ति के उपाय आदि विषयोंका निरूपण(उल्लेख) वेद, गीता, भागवतादि पुराण आदि शास्त्रोंमें मिलता है. इसकारण उपरोक्त हरेक विषयोंके निर्णय यदि इन शास्त्रोंके वचनोंके आधारपर लिये जाते हों तभी उन्हें प्रामाणिक माना जा सकता है. भारतीय संस्कृतिकी यही सनातन परंपरा रही है. उपरोक्त विषयोंमें निर्णय जो स्वयंकी कल्पना, इच्छा या कोरे तर्कके आधारपर लिया जाता हो तो ऐसे निर्णयोंको प्रामाणिक नहीं माना जाता. 'आस्तिक' भी उसे ही माना जाता है कि जो वेदादि शास्त्रोंको प्रमाण या निर्णायक मानता हो. अतएव वेदादि शास्त्रोंको प्रमाण या निर्णायक न माननेवालेको 'नास्तिक' कहा जाता है.

खेलमें तल्लीन किसी किशोरको यदि पूछा जाये—"तुम यह खेल क्यों खेलते हो?" तो वह कहेगा "बस यूं ही आनन्द आता है इसलिये". इसी तरह प्रभुने इस समग्र सृष्टिकी रचना स्वयंकी क्रीड़ाकेलिये की है. 'क्रीड़ा' यानि खेल. स्वभावसिद्ध आनन्दकी निष्प्रयोजन स्वाभाविक अभिव्यक्तिके अलावा सृष्टिरूपा क्रीड़ाके भीतर भगवानूका दूसरा कोई भी प्रयोजन हो नहीं सकता. यही बात समझानेको शास्त्र 'भगवल्लीला' या 'भगवत्क्रीड़ा' जैसे शब्दोंद्वारा सृष्टिको वर्णित करते हैं.

किसी भी क्रीड़ामें विविधताका होना अति आवश्यक होता है. विविधताके न होने पर क्रीड़ा संभव नहीं रह जाती. जगत्-जीवोंकी उत्पत्तिसे पूर्व परब्रह्मके अलावा दूसरा तो कुछ था हि नहीं. ऐसी स्थितिमें खेलनेकी जो इच्छा हो तो भी कैसे या किससे खेला जा सकता था! अतः उपनिषद्+ कहता है: ब्रह्मने इच्छा की कि वह एकाकी होनेपर भी अनेकरूप बन जाये. ब्रह्मने इच्छा-संकल्पमात्रसे इन समग्र जड़-जीव रूपोंको

+ उपनिषद्= ब्रह्म, जीव, अंतर्यामी, जगत् आदि तत्त्वोंका निरूपण करनेवाले वेदके अंतिम भागको 'उपनिषद्' या 'वेदांत' कहा जाता है.

धारण कर लिया. अर्थात् यह समग्र जड़-जीव रूप ब्रह्म स्वयं ही बन गया. अतएव उपनिषद्में कहा गया है:

सर्वं खलु इदं ब्रह्म

अर्थ: यह सब कुछ ब्रह्म ही तो है.

यहां प्रश्न उठता है कि यदि सब कुछ ब्रह्म ही है तो वैसा दिखलायी क्यों नहीं देता? घड़ा सो तो घड़ा ही दिखलायी देता है और घोड़ा भी तो घोड़ा ही. इनमें ब्रह्म तो कहीं भी दिखलायी नहीं देता! इसका कारण समझाते हुवे श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि ब्रह्मको उपनिषद्में सत् चित् तथा आनन्द—यों तीन गुणधर्मोंवाला वर्णित किया गया है. 'सत्' यानि अस्तित्व/सत्ता या किसी वस्तुका होना. 'चित्' यानि चैतन्य; अपने होनेके भानके साथ होना. 'आनन्द' यानि अनंतता, किसी सीमित देश काल या स्वरूप के घेरेमें बंद न होना या अप्राकृत अलौकिक अनंत रूप-गुण-धर्मोंवाला होना.

हमने समझा कि ब्रह्ममें अनेक-अचिन्त्य अलौकिक शक्तियां हैं. इन अनेक-अचिन्त्य शक्तिओंमें आविर्भाव और तिरोभाव रूप दो विलक्षण शक्तिओंका समावेश भी माना गया है. ब्रह्म इन शक्तिओंकेद्वारा ही सृष्टिकी रचना करता है. 'आविर्भाव-शक्ति' यानि किसीभी नाम रूप या कर्म के साथ प्रकट हो पानेकी सामर्थ्य. 'तिरोभाव-शक्ति' यानि किसीभी प्रकट नाम रूप या कर्म को छिपा सकनेकी सामर्थ्य. ब्रह्म जब स्वयंके चित् और आनन्द धर्मोंको छिपाकर (तिरोहित करके) मात्र सत् धर्मसे प्रकट(आविर्भूत) होता है तब ब्रह्मके उस प्रकट रूपको 'जड़' नामसे पहचाना जाता है.

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश जड़ हैं. हमें दिखलायी देता समग्र जगत् इन पांच जड़ तत्त्वोंका ही समुदाय है. इन पांच तत्त्वोंको 'पंचमहाभूत' भी कहा जाता है. ब्रह्म ही जगत् रूपसे बना है, अतः जगत्को 'सत्य' तथा 'ब्रह्मात्मक' माना जाता है. परंतु ब्रह्मके चित् तथा आनन्द गुणधर्म जगत्में छिपे

हुवे रहते हैं, अतः हमारी बुद्धिपर अज्ञान छाया हुवा होनेसे इस जगत्का ब्रह्मात्मक होना हमें दिखलायी नहीं देता. उदा. :—

हम सभी भलीभांति जानते हैं कि हरेक मानवके भीतर, थोड़े-बहोत अंशोंमें, क्रोधी शांत या प्रसन्न आदि होनेके विविध स्वभाव तो रहते ही हैं. कोई मनुष्य, परंतु, स्वयंमें जब और जो स्वभाव प्रकट करता है, तभी और वही स्वभाव प्रकट दिखलायी देता है. दूसरे सभी स्वभाव उसमें होनेके बावजूद हमें दिखलायी नहीं देते. इसी तरह जगत्के भी ब्रह्मरूप होनेके बावजूद ब्रह्मने जगत्में स्वयंके मात्र 'सत्' धर्मको प्रकट रख कर अन्य सभी धर्मोंको छिपा रखा है. इसी कारणसे यह जगत् 'जड़'रूपमें ही दिखलायी देता है.

जगत्के 'जड़' रूपमें दिखलायी देनेका कारण हम समझे परंतु जगत् सभीको जड़ ही दीखता हो ऐसा नहीं है. इस बातको एक सरल उदाहरणद्वारा समझनेका प्रयास हम करेंगे. बालकको हरे रंगका चश्मा पहना देनेपर, उसे सब कुछ हरा ही दिखलायी देगा. इस तरह दिखलायी देती सभी वस्तुओंको वह सचमुचमें हरे रंगकी ही समझ लेगा; कारण कि वह अज्ञानी है. जबकि हरे चश्मा पहने हुवे किसी बड़ी उम्रके आदमीको भी यद्यपि दिखलायी तो देगा सब कुछ हरा ही परंतु वह इस बातको भलीभांति समझ पाता है कि वस्तु हरे रंगकी न होनेपर भी चश्मेके कारण हरे रंगकी दिखलायी देती है. जिसकी आंखोंपर, परंतु,किसी भी रंगका चश्मा नहीं होता, उसे जो वस्तु जिस रंगकी होगी उसी रंगकी दिखलायी देगी. अर्थात् ऐसे व्यक्तिको हर वस्तु अपने यथार्थ रंगरूपमें ही दिखलायी देगी.

ऐसे ही (१) भगवान् कृपा करके जिन जीवोंका अज्ञान समूल दूर कर देते हैं, ऐसे जीवोंको इस जगत्में किसी भी प्रकारके भ्रमके बिना शुद्ध ब्रह्मात्मक जगत् दिखलायी देता है. (२) जिनका अज्ञान भगवान्ने पूर्णतया दूर न किया हो उन्हें जगत् ब्रह्मात्मक दिखलायी देनेके बजाय उत्पत्ति, नाश या जड़ता आदि धर्मोंवाला दिखलायी देता है. परंतु शास्त्राभ्यासके कारण

वो मनमें इस बातको अच्छी तरह समझ लेते हैं कि वस्तुतः तो जगत् ब्रह्मात्मक ही है और उत्पत्ति नाश जड़ता आदि धर्म तो अज्ञानके कारण अनुभूत होते हैं; जैसे हरे चश्मा पहने हुवे वयस्क व्यक्तिको सब कुछ हरे रंगका दीखनेके बावजूद वह मनमें समझ पाता है कि वस्तुतः तो हरेक वस्तु हरे रंगकी नहीं होती है. जबकि (३) जिनका अज्ञान भगवान्ने तनिक भी दूर न किया हो ऐसे अज्ञानिओंको तो इतना भी विवेक नहीं होता. अतः हरे चश्मा पहने हुवे बालककी तरह जैसा भी जगत् दिखलायी देता है, वैसा ही जगत् वे मान बैठते हैं. जो जगत् वस्तुतः ब्रह्मात्मक है, उसे उत्पत्ति नाश या जड़ता आदि धर्मोंवाला मान बैठते हैं.

तत्त्वदृष्टिसे देखनेपर तो जगत्की कोई भी वस्तु उत्पन्न या नष्ट होती ही नहीं. जैसे पानीको उबालनेपर वह भाप बन जाता है, जो केवल एक रूपांतर ही होता है, क्योंकि दोबारा भापको एकत्रित करनेपर फिरसे पानी भी बन सकता है. ऐसे ही जगत्की हरेक वस्तुका, भगवान्की उस वस्तुको प्रकट करनेकी (आविर्भाव) या छिपानेकी (तिरोभाव) इच्छाके अनुसार, रूपान्तरण ही होता रहता है. न तो शून्यमेंसे किसी वस्तुको उत्पन्न किया जा सकता है और न किसी वस्तुका समूल नाश ही शक्य है. जो कुछ शक्य है वह तो केवल इतना ही कि अप्रकट वस्तुको प्रकट करना या प्रकट वस्तुका रूपांतर करके उसे अप्रकट=अदृश्य बना देना.

जगत् भगवदात्मक है उसे हीनदृष्टिसे नहीं देखना चाहिये. क्योंकि भगवान्की इच्छासे उसमें आनंद प्रकट नहीं हुवा; अतः आनंदके खोजी चाहकोंको आनंदकी खोजमें यहां-वहां भटकनेके बजाय, संसारमें आसक्ति छोड़ कर भगवान्में ही आसक्ति रखनी चाहिये.

विशेषाध्ययनार्थ ग्रंथ :

षोडशग्रंथके अन्तर्गत सिद्धान्तमुक्तावली.

श्रीलालुभट्टजीकृत प्रमेयत्नार्णवमेंसे प्रपंच और ख्याति विवेक.

८. मार्ग

मार्ग :

इष्टप्राप्तिके उपायको 'मार्ग' कहा जाता है. दूसरे शब्दोंमें कहना हो तो जिसके द्वारा हम हमारे अभिलषित प्रयोजनकी पूर्ति कर पाते हों या उसे खोज पाते हों उसे 'मार्ग' (उपाय, साधन) कहा जाता है.

मार्गके प्रकार :

भगवान्‌ने स्वयंकी जीवसृष्टिमें पुष्टि मर्यादा और प्रवाही+ ऐसे मुख्यतया तीन भिन्न-भिन्न स्वभाववाले जीव उत्पन्न किये हैं. पुष्टिजीव प्रभुके सेवा-स्मरणद्वारा भक्तिलाभ पाते हैं. मर्यादाजीव वैदिक कर्म-ज्ञान-उपासनाद्वारा मुक्तिलाभ पाते हैं. जबकि प्रवाहिजीव तो प्रलय तक जन्म-मरणके ही चक्करमें फंसे रहते हैं; प्रभु उन्हें भक्ति या मुक्ति कुछ भी देते नहीं. तीनों ही प्रकारके जीव अपने-अपने फलको पा सके इसलिये पुष्टिमार्ग, मर्यादामार्ग और प्रवाहमार्ग — ऐसे तीन मार्ग भी भगवान्‌ने प्रकट किये हैं. हम इन मार्गोंका परिचय प्राप्त करेंगे.

१. पुष्टिभक्तिमार्ग :

मोक्षकी भी कामना रखे बिना श्रीकृष्णकी पुष्टिद्वारा श्रीकृष्णकी भक्ति पानेके मार्गको 'पुष्टिभक्तिमार्ग' कहा जाता है.

परब्रह्म श्रीकृष्णकी प्राप्ति केवल पुष्टिभक्तिमार्गसे ही हो सकती है; कर्म, ज्ञान या उपासना मार्गोंसे नहीं. अतः फलदृष्टिसे 'पुष्टिभक्तिमार्ग' सर्वश्रेष्ठ मार्ग है.

२. मर्यादा मार्ग :

वेदमें निरूपित कर्म ज्ञान या तंत्रशास्त्रमें निरूपित श्रीकृष्णके विभूतिरूप सूर्य आदि देवताओंकी उपासनाद्वारा मोक्ष पानेके मार्गको 'मर्यादामार्ग' कहा जाता है.

+ जीवोंके प्रकार समझनेके लिये देखो ६. जीव. पृ - २८

मर्यादामार्गमें स्वर्ग-मोक्षादि प्रदान करनेवाले तीन मार्ग हैं: (क) कर्ममार्ग, (ख) ज्ञानमार्ग तथा (ग) उपासनामार्ग.

(क). कर्ममार्ग : शास्त्रमें कहे गये यज्ञ आदि कर्मोंको भगवान्‌की क्रियाशक्तिका प्राकट्य जाना-मान कर, कर्मसे मिलते फलोंके बारेमें लालच रखे बिना, उन फलोंको श्रीकृष्णको समर्पित कर देना चाहिये. शास्त्रमें जिन कर्मोंको करनेकी मनाई है ऐसे 'निषिद्ध कर्मों'को त्याग कर अनिवार्यतया विहित 'नित्यकर्म' तथा प्रसंगोपात्ततया विहित 'नैमित्तिक कर्म' ही करने. इस तरह करनेसे सभी पाप तथा पुण्यों का नाश होनेपर मोक्ष मिलता है. कर्मफलोंकी लालचसे प्रेरित होकर 'काम्य कर्म' करनेवालेको, परंतु, स्वर्गादिरूप नाशवान फल ही मिलते हैं, जन्म-मरणके चक्रसे मोक्ष नहीं. इसे 'कर्ममार्ग' कहा जाता है.

(ख) ज्ञानमार्ग : लौकिक[१] तथा पारलौकिक[२] सभी विषयोंके बारेमें तीव्र वैराग्य[३] खिलनेपर संन्यास[४] लेकर शास्त्रमें निरूपित ज्ञानसाधनाद्वारा (अक्षरब्रह्ममें सायुज्यरूपा) मुक्ति पानेके मार्गको 'ज्ञानमार्ग' कहा जाता है.

(ग) उपासनामार्ग : तंत्रशास्त्रमें दिखलाये गये प्रकारसे इष्टदेवके नाममंत्रकी दीक्षा लेकर, शास्त्रमें जिन देवी-देवताओंका वर्णन है उनकी ब्रह्मके रूपमें मंत्र-विधिद्वारा उपासनासे मोक्ष दिलवानेवाले मार्गको 'उपासनामार्ग' या 'मर्यादाभक्तिमार्ग' कहा जाता है.

१. लौकिक = देह, परिवार, धन, समाज, धंधा-रोजगार आदिसे संबद्ध बातोंको 'लौकिक' कहा जाता है.

२. पारलौकिक = पितृलोक, गंधर्वलोक, देवलोक आदि लोकसंबंधी विषयोंको 'पारलौकिक' कहा जाता है.

३. वैराग्य = लौकिक तथा पारलौकिक विषयोंमें मोह न रखना.

४. संन्यास = लौकिक तथा पारलौकिक विषयोंके बारेमें वैराग्य सिद्ध होनेपर घर-परिवारका त्याग करके ईश्वरका चिंतन करते-करते कहीं भी स्थायी निवास किये बिना परिभ्रमण करते रहना.

३. प्रवाहमार्ग :

अच्छे-बुरे कर्मोंके कारण कर्मफल भोगते रहने अर्थात् जन्म-मरणके चक्करमें फंसाये रखनेवाले मार्गको 'प्रवाहमार्ग' कहा जाता है.

भगवान्ने जिन जीवोंको जिस मार्गकेलिये चुनाव(वरण) किया हो उन जीवोंकी उसी मार्गमें रुचि और निष्ठा पनपती है या टिक पाती है. इसका सीधा अर्थ ऐसा होता है कि जिस मार्गमें हमारी रुचि हो उस मार्गकेलिये ही भगवान्ने हमें चुना है. अपनी रुचि तथा अधिकार के अनुसार मार्गके अनुसरण करनेमें ही अपने जीवनकी सार्थकता है.

प्रायः हरेक मार्गके उपमार्ग होते ही हैं. इन उपमार्गोंको ही 'संप्रदाय'के नामसे पहेचाना जाता है. महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यद्वारा प्रवर्तित संप्रदाय यह 'पुष्टिभक्तिमार्ग'का ही उपमार्ग है. अब हम संप्रदायका स्वरूप समझनेका प्रयास करेंगे.

विशेषाध्यानार्थ ग्रंथ :

षोडशग्रंथके अन्तर्गत पुष्टिप्रवाहमर्यादा.
श्रीगुसांईजीकृत भक्तिहंस तथा भक्तिहेतुनिर्णय.

९. सम्प्रदाय

सम्प्रदाय :

शिष्यके आत्मकल्याणकेलिये गुरुद्वारा दी जाती, इष्टदेवके नाममंत्रकी दीक्षा देनेवाली परंपराको 'सम्प्रदाय' कहा जाता है.

सम्प्रदायकी आवश्यकता :

प्रचलित शिक्षाके क्षेत्रमें विद्याकी तीन प्रमुख शाखा — विज्ञान, कला और वाणिज्य हैं. विज्ञानमें भी रसायनशास्त्र, जीवविज्ञान, शरीरशास्त्र, भौतिकविज्ञान जैसी उपशाखायें होती हैं. उसी तरह कला और वाणिज्य में भी विद्याकी उपशाखायें होती हैं. हर विद्यार्थीकी रुचि विद्याकी हरेक शाखामें हो नहीं सकती. इसी कारण शैक्षणिक संस्थायें विद्याकी अलग-अलग शाखाओंमें रुचि रखनेवाले विद्यार्थिओंकेलिये शिक्षणविभाग भी अलग-अलग रखते हैं. शिक्षणके ऐसे अलग-अलग विभाग रखनेके पीछे शैक्षणिक संस्थाओंके हेतु — विद्यार्थीको उसकी रुचिका विषय, अच्छी ओर सच्ची रीतिसे पढ़ाना ही होता है, ताकि वह जीवनमें प्रगति कर सके. इसके अलावा दूसरा कोई हेतु हो नहीं सकता.

स्वयंकी क्रीड़ाकेलिये निर्मित सृष्टिमें भगवान्ने सभी जीवोंको एक ही जैसे स्वभाव या रुचि वाले नहीं बनाये हैं. इस तथ्यको हम स्थूल बुद्धिसे भी समझ सकते हैं. विभिन्न रुचिवाले जीवोंको उनकी रुचिके अनुसार धर्मका ज्ञान मिलता रहे और वे अपना जीवन जी पायें ऐसे सदहेतुसे, भगवान्की आज्ञासे ही विभिन्न शास्त्रीय धर्म-सम्प्रदाय प्रवृत्त हुवे हैं.

यदि विभिन्न धर्म-सम्प्रदाय न होते तो क्या होता ?

मान लो कि, जैसे, शिक्षाक्षेत्रमें विज्ञान कला आदि अलग-अलग विभाग न होते तो विद्यार्थी स्वयंके मनचाहे विषयोंका अध्ययन गंभीरताके साथ भलीभांति न कर पाते और अनचाहे अनेक विषयोंका अध्ययन उन्हें हठात् करना पड़ता. इसी तरह ईश्वरप्राप्तिके विभिन्न उपाय बतानेवाले भिन्न-भिन्न धर्म-सम्प्रदाय विभिन्न

स्वभाववाले या रुचिवाले जीवोंको, यदि मिल न पाते हों तो वे स्वयंका मनचाहा आध्यात्मिक विकास कैसे साध पाते? इसके अलावा यह जगत् प्रभुने स्वयंकी क्रीड़ाकेलिये बनाया है और क्रीड़ा विविधताके बिना हो नहीं सकती, इस कारणसे भी विभिन्न जीवोंकेलिये विभिन्न सम्प्रदाय होने अति आवश्यक हैं.

स्वसम्प्रदायका आचरण श्रेष्ठ:

भगवानने जिन जीवोंकेलिये जो संप्रदाय प्रवर्तित किये हैं जीवोंको उसी संप्रदायमें जा कर अपना आत्मकल्याण करना चाहिये. अतएव भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें आज्ञा करते हैं:—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

अर्थ: परधर्म (पराये धर्म)को भलीभांति निभानेके बजाय जैसे भी बने स्वयंके धर्मको निभाना कल्याणकारी होता है. क्योंकि परधर्मको अपना कर भयावह जीवन जीनेके बजाय स्वधर्मको निभाते हुवे मर जाना श्रेष्ठ बात है.

श्रीमहाप्रभुजी भी 'सर्वनिर्णयनिबंध'में आज्ञा करते हैं:—

स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम्

अर्थ: अपनी शक्तिके अनुसार स्वधर्मका आचरण करना चाहिये परंतु विधर्मसे तो दूर ही रहना चाहिये.

सम्प्रदायके घटक तत्त्व:

सुविचारित तथा सुस्थापित हरेक सम्प्रदायमें कमसे कम ये चार पक्ष होते हैं:—

(१) तत्त्वदर्शन या तत्त्वविचार पक्ष
(२) सिद्धान्तपक्ष
(३) साधना, आचार या व्यवहार पक्ष
(४) फलपक्ष.

इन चार पक्षोंके संदर्भमें उपदेशभी चार प्रकारके होते हैं:—

तत्त्वोपदेश : परतत्त्वका स्वरूप क्या-कैसा है, जीव-जगत्का स्वरूप या मूल क्या-कैसा है, परमात्माके साथ जीव और जगत् के संबंध किस प्रकारके हैं—इस विषयमें सम्प्रदायके सिद्धान्त, व्यवहार और फलपक्ष के आधारभूत तात्त्विक उपदेशको 'तत्त्वोपदेश' कहा जाता है.

सिद्धान्तोपदेश : तत्त्वविचारके आधारपर व्यवहारका नियमन करनेकेलिये नीति-नियमोंका निरूपण 'सिद्धान्तोपदेश' कहा जाता है.

व्यवहारोपदेश : सिद्धान्तोंका आचरण अर्थात् उन्हें व्यवहारमें कैसे लाना या कैसे न लाना इस विषयके उपदेशको 'व्यवहारोपदेश' कहा जाता है.

फलोपदेश : व्यवहारोपदेशमें दरसाये गये आचरणोंके अनुसार सिद्धान्तोंको व्यवहारान्वित (साधना) करनेपर तदनुसारी मिलनेवाले फलके निरूपणको 'फलोपदेश' कहा जाता है.

इस तरहके चारों उपदेशोंके पुनः विधानात्मक तथा निषेधात्मक (वि. तथा नि.) यों दो अवान्तर भेद और होते हैं. इन सब प्रकारोंको हम 'शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्तिमार्ग'के आधारपर समझनेका प्रयास करेंगे.

वि. तत्त्वोपदेश : श्रीकृष्ण जगत्पिता परमात्मा परब्रह्म हैं.

नि. तत्त्वोपदेश : श्रीकृष्णके सिवा अन्य कोई भी देवी-देवता या अवतार परब्रह्म नहीं हैं.

वि.सिद्धान्तोपदेश : श्रीकृष्णकी सेवा करनी यह सभी पुष्टिजीवोंका धर्म है.

नि.सिद्धान्तोपदेश : श्रीकृष्णको आराध्य मान कर उनके सेवा-स्मरण करनेवालेकेलिये दूसरे किसी देवी-देवताओंका आश्रय लेना यह भक्तिमार्गीय अपराध है.

वि.व्यवहारोपदेश : योग्य गुरुके पास आत्मनिवेदनकी दीक्षा लेकर स्वयंके घरमें श्रीकृष्णका स्वरूप पधरा कर स्वयंके

ही तन और धन से श्रीकृष्णकी सेवा करनी चाहिये.

नि. व्यवहारोपदेश : अयोग्य व्यक्तिके पाससे दीक्षा नहीं लेनी चाहिये. स्वयंके घरके अलावा किसी भी सार्वजनिक स्थलमें भगवत्सेवा नहीं करनी चाहिये. किसीको पैसा या कोई वस्तु देकर भगवत्सेवा नहीं करवानी चाहिये, ऐसे ही भगवत्सेवा करनेकेलिये किससे पैसा या कोई वस्तु लेनी भी नहीं चाहिये.

वि. फलोपदेश : कृष्णसेवा यदि स्वयंके ही घरमें स्वयंके ही तन और धन से प्रेमपूर्वक करनेमें आती हो तो ही सेवा करनेवालेका मन श्रीकृष्णमें अविरत अनुरत हो पाता है.

नि. फलोपदेश : (१)कृष्णसेवा यदि हवेली-मंदिर जैसे सार्वजनिक स्थलोंमें करनेमें आती हो या (२)किसी दूसरेसे धन लेकर अर्थात् पराये धनसे सेवा की जाती हो या (३)किसी दूसरेको धन देकर सेवा करवायी जाती हो, तो दोनोंमेंसे किसीका भी मन श्रीकृष्णमें नहीं लग पाता. धन देनेवालेका मन अभिमानसे दूषित बन जाता है, जबकि पैसा लेनेवाला पापी देवलक बन जाता है. सार्वजनिक मंदिर या हवेली में सेवा करनेवाले गुरु कालक्रमशः दर्शनार्थी जनताके या सरकारके पगारदार पुजारी-नोकर बनकर पतित हो जाते हैं.

साधनाके आंतर और बाह्य पक्ष:

किसी भी साम्प्रदायिक ईमारतकी नींव उसकी तत्त्वदृष्टि होती है कि जिसपर उस सम्प्रदायके सिद्धान्त और साधना का भवन खड़ा किया जाता है. हर सम्प्रदायमें साधनाके आंतर और बाह्य ऐसे दो पक्ष होते हैं. जैसे पढ़नेकेलिये— विद्यालयमें जाना, अध्यापक-गुरुका आदर-सन्मान करना, अध्यापकके सूचनोंको लेखबद्ध

करना, उचित विद्यार्थिवेश पहनना इत्यादि सारे बाह्य अनुशासन या पक्ष हैं. जबकि अधीत विषयोंका पुनरावर्तन करना, उन्हें भलीभांति याद करना इत्यादि आन्तर अनुशासन या पक्ष हैं. ये दोनों पक्ष जैसे विद्याप्राप्तिकेलिये आवश्यक होते हैं, वैसे ही साम्प्रदायिक साधनामें भी आंतर और बाह्य दोनों पक्ष समानरूपसे महत्त्वके होते हैं. पुष्टिभक्तिमार्गमें श्रीकृष्णके नाम-रूप-लीलाका श्रवण-कीर्तन-स्मरण आंतर साधना है. स्वयंके तन-धनसे श्रीकृष्णकी सेवा करनी बाह्य क्रियात्मक साधना है. इन दोनों पक्षोंके समन्वयसे ही पुष्टिभक्तिमार्गीय साधना संपूर्णतया निभायी जा सकती है.

सम्प्रदायरहित साधना निष्फल:

अपने शास्त्रोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके असंख्य कर्तव्यों तथा अकर्तव्यों +का निरूपण मनुष्योंके विभिन्न स्वभाव, रुचि तथा योग्यता के अनुरूप करनेमें आया है. इन असंख्य कर्तव्योंमेंसे किस व्यक्तिकेलिये कब-कौनसे अपनाने या न अपनाने लायक होते हैं, यह सामान्य मनुष्यद्वारा निर्धारित नहीं हो सकता. जिस तरह कानूनी परंपरामें— आयकर, संपत्तिकर, खेती, निर्यात या चोरी इत्यादि अनेक विषयोंके बारेमें असंख्य कानून घड़े जाते हैं. इन विषयोंमेंसे किसी भी एक विषयमें यदि कोई प्रश्न उभरते हों; या उनको समझनेमें कठिनाई सामने आती हो तो, हम उस विषयके निष्णात वकीलकी मदद-सलाह लेने जाते हैं. क्योंकि यदि अपने वकीलकी उचित सलाह लिये बिना ही अथवा कानूनी सही-सिक्केकी कारवाई पूरी किये बिना कोई कार्य शुरु कर दें तो वह गैरकानूनी माना जायेगा. इसी तरह अपने स्वयंकी रुचि स्वभाव या योग्यता के अनुसार हमारा क्या-कैसा कर्तव्य है, यह हम सम्प्रदायोंकेद्वारा निर्धारित कर सकते हैं. इसके अलावा अन्य किसी भी तरह हम अपने कर्तव्यका निर्धारण नहीं कर सकते. अतएव अपने शास्त्रोंमें सम्प्रदायकी अनिवार्यता समझाते

+ कर्तव्य = करनेयोग्य कार्य. अकर्तव्य = न करने योग्य कार्य.

हुवे स्पष्टरूपसे कहा गया है कि सम्प्रदायमें प्रवेश किये बिना जो कोई भी कर्म करनेमें आता हो तो वह कर्म निष्फल ही रहता है.

अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वम् अनर्थकम्।
पशुयोनिम् अवाप्नोति दीक्षाहीनो नरो मृतः॥

अर्थ: दीक्षा न लेनेवाले व्यक्तिकेद्वारा किया-धरा सब कुछ नहीं करनेके बराबर ही होता है. दीक्षाविहीन पुरुष मर कर पशुयोनिको प्राप्त करता है.

इस तरह हमने संप्रदायको सभी पक्षोंसे समझा. जो साधक अपने स्वयंके संप्रदायके तत्त्वोपदेश, सिद्धान्तोपदेश ऐसे ही व्यवहारोपदेश को भलिभांति समझकर साधना करता है, वह श्रेष्ठ है. जो साधक तत्त्वोपदेशके ज्ञान बिना केवल सिद्धान्त और व्यवहारोपदेश को समझ कर साधना करता है, वह मध्यम है. जबकि केवल व्यवहारोपदेशका ज्ञान प्राप्त करके जो साधना करता है, ऐसे साधकके मार्गसे भटक जानेकी संभावनायें प्रबल होनेके कारण उस साधकको हीन, निम्न या जघन्य कक्षाका माना जाता है. जिस साधकको, परन्तु, व्यवहारोपदेशकी भी भलीभांति समझ न हो ऐसेकी तो किसी भी कक्षामें गिनती की ही नहीं जा सकती.

विशेष अध्ययनके लिये ग्रंथ:
श्रीगट्टुलालाजीकृत सत्सिद्धान्तमार्तण्ड.

१०. पुष्टिभक्तिमार्ग

पुष्टिभक्तिमार्ग:

मोक्षकी भी कामना रखे बिना श्रीकृष्णकी कृपासे श्रीकृष्णकी भक्ति प्राप्त करनेके मार्गको 'पुष्टिभक्तिमार्ग' कहा जाता है.

पुष्टिभक्तिमार्गकी पृष्ठभूमि:

जीवसृष्टिमें कुछ जीवोंको भगवान्ने पुष्टिस्वभाववाले बनाये हैं. श्रीकृष्णकी स्वरूपसेवाकेलिये ही इन पुष्टिजीवोंकी सृष्टि है. पुष्टिजीव, परंतु, प्रभुसे बिछुड़ जानेके कारण अन्य प्रवाही जीवोंकी तरह सांसारिक आकर्षणोंमें खो गये. छुट्टिके दिनोंमें खेल-कुदमें मस्त हो जानेके कारणे जैसे विद्यार्थी अपनी पाठ्य पुस्तकोंको भूल जाते हैं, ठीक वैसे ही पुष्टिजीव भी प्रभुको भूल जानेके कारण प्रभुसेवारूप स्वयंके कर्तव्यको भी भूल गये.

कलिकालके प्रभाववश वेदशास्त्रके नामपर अनेक पाखंड मत फूट निकलनेके कारण धर्मका यथार्थ स्वरूप लुप्त हो गया. इसी तरह वेदविरुद्ध निषिद्ध अधार्मिक आचरण करनेसे लोग पापके भागी बन गये. क्रूर घातक मुसल्मान राजाओंके आतंकके कारण लोगोंको बलात् स्वधर्म छोड़ देनेको विवश होना पड़ा. ऐसी परिस्थितिमें सीधे-सादे लोग धर्मका आचरण कैसे कर सकते थे! धर्मका ज्ञान किस तरह प्राप्त कर सकते थे! लोगोंकी ऐसी असहाय अवस्था देखकर कुछ ज्ञानी और प्रतिष्ठित परंतु लालची ब्राह्मणोंने धर्मका व्यापार शुरू कर दिया. इस कारणसे धर्मका स्वरूप इतनी हद तक विकृत हो गया कि धर्म क्या-कैसा और अधर्म क्या-कैसा—यही समझ पाना अशक्य हो गया. असहाय व्यक्ति जैसे अधीर असहिष्णु या लालची बन जाता है, वैसे अल्प महेनतसे ज्यादा फल प्राप्त करलेनेकी लालचके कारण अज्ञानी लोग धन-संपत्ति या प्रतिष्ठा केलिये कर्म करने लग गये. और धर्म, जिसे भारतीय संस्कृतिमें एक जीवनप्रणाली और व्यक्तिगत साधनाके रूपमें मान्य किया गया है, वह मिटकर

सार्वजनिक प्रदर्शन, पदप्रतिष्ठा तथा संपत्ति प्राप्तिका साधन बन गया. अंतमें ब्राह्मण भी स्वधर्मका ज्ञान भूल जानेके कारण स्वधर्मरूप यज्ञयागादि कर्मकी तरह स्वधर्मरूप देवपूजाको भी — मंदिरोंके माध्यमसे, धर्मकी आड़में स्वयंकी आजीविकाका साधन-व्यापार बना बैठे. शास्त्रमें बताये हुवे श्रीकृष्णके विभूतिरूप देवी-देवताओंकी उपासनासे मिलते नाशवान क्षुद्र लौकिक फलोंके मोहसे, पुष्टिजीव भी सभी देवी-देवताओं एवं जड़-चेतन वस्तुमात्रके मूलरूप परब्रह्म श्रीकृष्णकी शुद्ध निष्काम पुष्टिभक्तिके स्वरूपको भूल गये. पुष्टिभक्तिका जिसमें निरूपण है, ऐसे श्रीभागवतशास्त्रका यथार्थ उपदेश, स्वार्थी लोगोंके द्वारा किये गये मनमाने अर्थोंके कारण तिरोहीत हो गया. नदीके प्रवाहमें बहनेवाले व्यक्तिको यदि बचानेवाला कोई न हो तो वह जाना ही एक नियति बन जाती है. कलिकालके ऐसे प्रवाहमें पुष्टिजीव भी बहने लग गये. जिन्हें स्वयंकी सेवालिये प्रभुने प्रकट किया है ऐसे जीवोंका जीवन प्रभुकी सेवा बिना व्यर्थ जाता देख कर स्वयंकी सेवाका मार्ग प्रकट करके कालप्रवाहमें बहनेवाले पुष्टिजीवोंका उद्धार करनेकी भगवान्ने श्रीमहाप्रभुजीको आज्ञा दी. भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे आत्मसमर्पण और श्रीकृष्णसेवा का जो मार्ग श्रीमहाप्रभुजीने स्थापित किया उसीको 'पुष्टिभक्तिमार्ग' नामसे पहचाना जाता है.

भक्तके मनमें भक्तिसे लौकिक-पारलौकिक फल या मोक्ष प्राप्तिकी कामना हो तो ऐसी भक्तिको 'पुष्टिभक्ति' नहीं कहा जा सकता. पुष्टिभक्तिमार्गकी व्याख्या करनी हो तो इस प्रकारसे दी जा सकती है: "मोक्षकी भी कामना रखे बिना श्रीकृष्णकी कृपासे श्रीकृष्णकी भक्ति प्राप्त करनेके मार्गको 'पुष्टिभक्तिमार्ग' कहा जाता है". पुष्टिभक्तिकी समझ श्रीमहाप्रभुजीके शिष्य बूला मिश्रके चरित्रसे अत्यंत ही सुंदर रीतिसे मिलती है.

बूला मिश्रका जन्म एक ब्राह्मण परिवारमें हुआ था. मौज-मस्तीमें डूबे हुवे बूला मिश्रको पिताने एक बार टोका तो उन्हें विद्याभ्यासकी लगन लग गयी. विद्याकी प्राप्तिकेलिये काशी गये. बहोत मेहनत की परंतु सफल नहीं हुवे. अंतमें भगवान्की इच्छासे ही सब

कुछ होता है, ऐसा सोच कर "विष्णु-विष्णु-विष्णु" जप करने लग गये. अन्न-जलका भी त्याग कर दिया. अकस्मात् प्रभु प्रसन्न हुवे. दर्शन देकर श्रीमहाप्रभुजीके पासे जानेकी आज्ञा दी. आज्ञा मिलते ही बूला मिश्र श्रीमहाप्रभुजीके पास जा पहुंचे. उनके आते ही श्रीमहाप्रभुजीने कहा–"धन्य हो तुम! इतनी धीरज और दृढ़ता के कारण इसी देहसे प्रभुके दर्शन पाये!" बूला मिश्रने विनंती की–"कृपानाथ! प्रभुके दर्शन हुवे यह तो बड़ी कृपा परंतु प्रभुके स्वरूपानंदकी अनुभूति नहीं मिली. वह तो आप कृपा करके सेवक बनाओगे तब ही मिलेगी." परीक्षा लेनेकी इच्छासे श्रीमहाप्रभुजीने उनकी बातको टालते हुवे कहा–"अब तुम्हें क्या करना बाकी रह गया? साक्षात् दर्शन तो हो गये!" यह सुन कर बूला मिश्र बोले–"मुझे मुक्ति नहीं, भक्ति चाहिये. इसीलिये मैं आपकी शरणमें आया हूं."

दर्शनवादी पुष्टिभक्तिमार्गी नहीं होते:

दर्शनकेलिये तो अनेक लोग मंदिरोंमें भटकते ही होते हैं और दिनमें एकाद बार दर्शन करके कर्तव्यपालनका संतोष भी मान लेते हैं. ऐसे दर्शनवादी लोग, परंतु, पुष्टिमार्गके लायक नहीं होते. क्योंकि श्रीमहाप्रभुजीके प्राकट्यका तो प्रयोजन ही पुष्टिजीवोंको आत्मसमर्पण और प्रभुसेवा के मार्गपर मोड़नेका था. बाकी दर्शनमात्रसे संतुष्ट होजाने वाले दर्शनवादियोंकेलिये तो श्रीमहाप्रभुजीके पहले भारतभरमें असंख्य श्रीकृष्णमंदिर थे ही. औरफिर प्रभुने तो पुष्टिजीवोंको प्रकट ही स्वयंकी सेवाकेलिये किये हैं. अतः जो सच्चे पुष्टिजीव हैं उनकी तो अपने घर बिराजते प्रभुकी सेवामें ही रुचि होती है. दर्शनमात्रसे पुष्टिजीव कैसे संतुष्ट हो सकते हैं! दर्शनमात्रसे संतोष माननेवाले कभी भी पुष्टिजीव नहीं हो सकते. और जो पुष्टिजीव ही न हों उन्हें पुष्टिमार्गमें प्रवेश कैसे दिया जा सकता है? यही सोच कर श्रीमहाप्रभुजीने बूला मिश्रको एक बार टालनेका प्रयत्न किया और कहा–"प्रभुके दर्शन तो तुमने साक्षात् कर लिये, अब तुम्हें

क्या करना बाकी रह गया?" परंतु बूला मिश्र तो पुष्टिजीव थे. उन्हें दर्शनमात्रसे संतोष कब होनेवाला था! भले ही वह दर्शन अलौकिकरूपसे ही क्यों न हुवे हों! पुष्टिजीवका तो कर्तव्य ही सर्वसमर्पणपूर्वक प्रभुसेवा करना है. अगर वह सेवा नहीं करता है तो उसका अस्तित्व ही निरर्थक बन जाता है. अतः बूला मिश्रने उत्तर दिया—"दर्शन हुवे वह तो आपकी कृपा, पर मुझे तो प्रभुकी भक्ति चाहिये. अतः मैं आपकी शरणमें आया हूं."

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि प्रभुकी सेवाभक्तिके मार्गको 'पुष्टिभक्तिमार्ग' कहा जाता है. इस मार्गमें साधन भी प्रभुसेवा है और उससे प्राप्त होता फल भी प्रभुसेवा ही है.

विशेष अध्ययनके लिये ग्रंथ:

श्रीमहाप्रभुजी विरचित श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्र.

चोरासी वैष्णवोंकी वार्ता.

पुष्टिप्रवेश — २

११. भगवदाश्रय

आश्रय:

इहलोक / परलोक संबंधि या भक्ति से संबंधी; अथवा शक्य या अशक्य, हरेक बाबतमें एकमात्र श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक और आधार हैं— ऐसे सर्वदा और सर्वथा रखे जाते भावको पुष्टिभक्तिमार्गमें 'आश्रय' कहा जाता है.

आश्रयकी महिमा:

भगवदाश्रयकी महिमा अपने इतिहास-पुराण आदिमें आते भक्तोंके चरित्रोंमें जगह-जगह वर्णित की गयी है.

प्राचीन समयमें 'हिरण्यकशिपु' नामक एक दुष्ट-पापी दैत्य राजा था. उसके सबसे छोटे पुत्रका नाम 'प्रह्लाद' था. प्रह्लाद परम भगवद्भक्त थे. सोते-बैठते, खाते-पीते बस भगवान्का ही ध्यान धरते थे. वह जब थोड़े बड़े हुवे तब पिताने उनकी शिक्षाकेलिये दो राक्षस गुरु नियुक्त किये. परंतु राजनीतिके उस शिक्षणमें उनका मन न लगता था. एक दिन हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको पूछा— "बेटा! तुम्हें सबसे अधिक कौन सी वस्तु सुहाती है?" प्रह्लाद जानते थे कि उनके पिताके दुष्ट भाईको भगवान्ने माराथा इस कारणसे वह भगवान् और भगवद्भक्तों के वैरी हैं. फिर भी खूब नीडरतासे उत्तर दिया:—

> भगवान्से दूर ले जाने वाली सभी सांसारिक
> बातोंसे दूर रह कर भगवान्का ही आश्रय करना
> चाहिये. इसीको मैं उत्तम समझता हुं.

यह उत्तर सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोधसे भड़क उठा. प्रह्लादके गुरुओंको उसने तुरंत ही बुलाया फिरसे सावधानिपूर्वक शिक्षण देनेको कहा. परंतु प्रह्लादका मन तो जैसे लोहचुंबक लोहेकी ओर अपने-आप आकर्षित हो जाता है उस तरह भगवानमें लगा रहता था.

कुछ दिनोंके बाद दोबारा जब हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको उनके अध्ययनके बारेमें पूछा तो प्रह्लादने जवाब दिया:—

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन,
दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन यों नौ प्रकारकी
भक्ति भगवान् विष्णुको अर्पित करना जिसमें सिखाया
जाता हो तो ऐसे अध्ययनको मैं उत्तम समझता हूं.

यह सुनकर हिरण्यकशिपु बहोत गुस्सा हुआ. उसने प्रह्लादको मरवानेका निर्णय लिया. उन्हे मरवानेकेलिये हाथीके पैरों तले कुचलवाया, ज़हरीले सांपोसे कटवाया, पर्वत परसे और समुद्रमें फिंकवाया, ज़हर पिलाया. एकमात्र श्रीकृष्णका ही, परन्तु, जिन्हे आश्रय था ऐसे प्रह्लादका बाल भी बांका न हुआ. जब उन्हे अग्निमें फेंका गया तब प्रह्लादने कहा :—

सभी प्रकारके दुःखोंको दूर करनेका एकमात्र उपाय
भगवन्नामका जप करना ही है. जो भगवन्नामका
उच्चार किया करते हैं उन्हें किसी भी प्रकारका भय
कहांसे हो सकता है! पिताजी, देखो! जो अग्नि
सभीको भस्म करती है वह प्रभुनामके उच्चारके कारण
मेरे अंगके स्पर्शसे जल समान शीतल हो गई!

प्रह्लादके इन वचनोंका अर्थ यही है कि भगवदाश्रयमें इतनी शक्ति है कि इसके सामने लौकिक या पारलौकिक सभी शक्तियां तुच्छ बन जाती हैं और श्रीकृष्णका आश्रय करनेवाले जीव श्रीकृष्णको सरलतासे प्राप्त कर सकते हैं.

समयके भरोसे न रहो :

असुर बालकोंको उपदेश देते हुवे प्रह्लादजीने कहा सभी देहोंमें मनुष्यदेह ही ऐसी है कि जिसमें जीव परमात्माकी प्राप्तिके उपाय कर सकता है. ऐसा मनुष्यदेह बहुत भाग्यवालोंको मिलता है. इसलिये मनुष्यजन्ममें तो भगवान्के चरणोंका आश्रय लेना ही एकमात्र धर्म है.

प्रह्लादजी आगे कहते है कि सामान्य रीतिसे मनुष्यकी आयुष्य सो वर्षकी गिनायी गयी है. उसमेंसे आधी आयुष्य तो निद्रामें ही चली जाती है. बचपनके वर्ष अज्ञानमें निकल जाते

हैं और आगेके कुछ वर्ष खेल-कूदमें बीत जाते हैं. इसतरह बड़े होनेके साथ घर-संसारकी सिरपच्चीमें और बुढ़ापा आनेपर तो आंख-कान-हाथ-पांव-बुद्धि आदि शिथिल हो जानेसे मनुष्य कुछ भी कर सकनेकी स्थितिमें नहीं रह जाता है. इस तरह हम समझ सकते हैं कि "भगवन्नाम लेने या भजन का सच्चा समय बुढ़ापा होता है" ऐसा माननेवाले कितने अज्ञानी हैं! ऐसे लोगोंका जीवन समयकी राह देखनेमें ही बीत जाता है. इसीलिये कहा है कि

युवैव धर्मशीलः स्याद् अनित्यं हि जीवनम्।
फलानामिव पक्वानां सदा हि पतनाद् भयम्॥

भावार्थ: मनुष्यको युवावस्थामें ही धर्माचरण आरंभ कर देना चाहिये. क्योंकि जीवनका कोई भरोसा नहिं होता. ("बुढ़ापेमें हरिगुण गायेंगे" ऐसी मान्यता रखनेवालोंकेलिये कहा गया है कि) जैसे पका हुआ फल वृक्षपरसे कभी भी नीचे गिर सकता है, वैसे वृद्ध पुरुषको निरंतर मृत्युका भय लगा रहता है.

इसी बातको समझानेवाली एक उल्लेखनीय घटना महाभारतमें वर्णित है. एक समय युधिष्ठिरके वहां कोई एक ब्राह्मण मदद मांगने आया हुवा था. युधिष्ठिरने ब्राह्मणको अगले दिन दान लेने आनेको कहा. यह सुनकर भीमको आश्चर्य हुआ. वह तो ढोल-शहनाइ बजाकर उत्सव मनाने लगा. यह कोलाहल सुनकर युधिष्ठिरने भीमको इसका कारण पूछा तो भीमने उत्तर दिया— "आपने कालपर विजय पा लिया इस खुशीमें यह उत्सव मनाया जा रहा है. क्योंकि उस ब्राह्मणको आपने अगले दिन दान देनेकेलिये कहा; इसलिये कमसे कम कल तक तो जीवित रहेनेका आपका विश्वास है. यह जानकर मुझे बहोत प्रसन्नता हुयी. भीमके कटाक्षपूर्ण वचनोंको सुनकर युधिष्ठिरको अपनी गलती समझमे आयी कि समय किसीके वशमें नहीं होता . उन्होंने ब्राह्मणको उसी समय बुलाकर मदद की.

इन सब बातोंसे यही फलित होता है कि समयके भरोसे रहे बिना हमें प्रभुके सेवा-स्मरणमें लग जाना चाहिये. प्रभुकार्यको

करनेमें कोई उम्रका नियम हो नहिं सकता. समझ आई तभीसे प्रभुकार्यमें लग जाना चाहिये.

आश्रयका स्वरूप:

'आश्रय' शब्दके दो अर्थ होते हैं:

(१)आश्रय = आश्रय लेनेकी क्रिया.

(२)आश्रय = जिसका आश्रय लिया जा रहा हो वह व्यक्ति या वस्तु.

आश्रय = आश्रय लेनेकी क्रिया. उदाहरणतया कोई डूबता मनुष्य बचनेकेलिये काठके टुकड़ेको पकड़ता हो तो हम कहते हैं कि "उसने काठके टुकड़ेका आश्रय लिया". ऐसे ही बरसातमें भीजता आदमी दोड़ कर किसी छप्परके नीचे खड़े हो कर पानीसे अपना बचाव करना चाहता हो तब भी हम यही कहते हैं कि "उसने छपरेका आश्रय लिया". यों हम समझ सकते हैं कि 'आश्रय'का एक अर्थ आश्रय लेनेकी क्रिया होता है.

आश्रय = जिसका आश्रय लिया जा रहा हो वह व्यक्ति या वस्तु. 'आश्रय'का अर्थ समझानेको दिये गये उपरोक्त प्रथम उदाहरणमें काठ या छप्पर को 'आश्रय' कहा जा सकता है. दूसरे शब्दोंमें समझना हो तो जिस भूमिका आधार ले कर हम खड़े हो पाते हैं उसे भी 'आश्रय' कहा जा सकता है.

सभीके आश्रयरूप भगवान्:

अर्जुनको स्वयंका अलौकिक स्वरूप समझाते हुवे भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं:—

अर्जुन! धागेमें जैसे मणियां पिरोयी हुयी रहती हैं वैसे ही यह समग्र जड़-जीवात्मक जगत् मेरा आश्रय ले कर टिका हुवा है.

भगवान्के इस वचनके आधारपर हम समझ सकते हैं कि इस समग्र सृष्टिके आश्रयरूप भगवान् ही हैं. इस दृष्टिसे देखनेपर तो कोई मनुष्य प्रभुका आश्रय ले या न ले, प्रभु तो सभीके आश्रय हैं ही. अतः जब प्रभुका आश्रय लिया जाता है तब

वास्तवमें तो "भगवान् ही मेरे आश्रय हैं" इस भूली-बिसरी बातको केवल याद दिलाना ही अभिप्रेत है. कारण कि भगवान् इस सृष्टिके आश्रय(रक्षक-आधार) न हों तो सृष्टिका अस्तित्व ही असंभव हो जाता है.

आश्रयका स्मरण आवश्यक है:

हम स्वीकारें या न स्वीकारें भगवान् तो हमारे आश्रयरूप रहनेवाले ही हैं; फिर पुनः-पुनः आश्रयका स्मरण क्यों करना?

ऐसा विचार करना तो अपराध है. जैसे एक बालक हररोज़ सुबह उठ कर माता-पिताको वंदन करता है, विवेकपूर्ण व्यवहार करता है और दूसरा बालक है जो ऐसा मानता है कि माता-पिता तो खाने-पीने-रहनेकी सुविधा तो देंगे ही; फिर रोज़-रोज़ वंदन क्या करना! सोचिये, दोनों बालकोंमेंसे माता-पिता किसको अधिक स्नेह करेंगे? सीधीसी बात है, पहले बालक को ही तो! इससे समझनेकी बात यह है कि खाने-पिने-रहनेकि सुविधा तो माता-पिता देते ही हैं फिर भी इन सब बातोंकी परवाह किये बिना संस्कारी बालक तो माता-पिताकी प्रसन्नता केलिये अपने स्वभावसे ही उनका आदर और सेवा करता है. उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके आश्रयका स्मरण और उनकी सेवा करना जीवमात्रका कर्तव्य है.

अपने कर्तव्यका पालन करनेवाले बालकको देख कर जैसे माता-पिता प्रसन्न होते हैं वैसे ही जीव भी यदि भगवानके सेवा-स्मरण करता है तो भगवान्को भी प्रसन्नता होती है. अतः श्रीआचार्यचरण नवरत्नग्रंथमें आज्ञा करत हैं:—

मन वाणी और देहसे प्रभुके शरणागत होकर सर्वदा अष्टाक्षरमंत्र बोलते रहना चाहिये ऐसा मेरा निश्चय है.

इस श्लोककी व्याख्यामें प्रभुचरण श्रीगुसांईजी आज्ञा करते हैं कि निरंतर अष्टाक्षरमंत्रका पाठ करनेसे हमारे भीतर आसुरीभावका प्रवेश नहीं हो सकता है.

लौकिक सुख-दुःखका कारण कर्तापनेका अभिमान:

आसुरीभावोंके कारण हम ऐसा समझ लेते हैं कि मेरे

हरेक कार्य जो पूर्ण हुवे, हो रहे हैं; और होंगे उनका कारण मैं ही हूं. ऐसे कर्तापनेके अभिमानके कारण ही हमें लौकिक सुख-दुःख अनुभूत होते हैं.

लौकिक सुख भी पीड़ाकारी होता है:

स्वजनका मरण होना, इच्छा पूरी न होना; या बीमार पड़ जाना आदि लौकिक दुःख तो पीड़ा देनेवाले होते ही हैं. साथ-साथ स्वर्गादि लोक, धनसंपत्ति, स्त्री-पुत्रादि, स्वादिष्ट भोजन आदिसे मिलता सुख भी अन्तमें दुःखदायी ही होता है, यह हमें भूलना नहीं चाहिये.

पैसा खर्च हो जानेपर जैसे फिरसे कमाने जाना पड़ता है, वैसे स्वर्गलोकके सुख भोगनेवाले व्यक्तिका पुण्य समाप्त हो जानेपर फिरसे उसको इस मृत्युलोक-पृथ्विमें आना पड़ता है. जितना परिश्रम तथा दुःख सहन करके मनुष्य धन-संपत्ति इकट्ठी करता है और उसे भोगनेका स्वप्न देखता है, उसमेंसे कुछ धन-संपत्ति तो भोग बिना ही हाथसे निकल जाती है, कुछको खरचनेको भी मन नहीं चलता; और कुछ धनसंपत्ति तो कभी-कभाक दुर्भाग्यवश क्षणभरमें ही हम खो बैठते हैं. स्त्री-पुत्रादि भी जब तक स्वयंकी इच्छाके अनुरूप चलते हों, तब तक ही सुखकर लगते हैं. अनुकूल स्त्री-पुत्रादिका भी हर समय साथ नहीं निभता, दैर-सबेर कभी न कभी तो उनका साथ छूट ही जाता है. स्वादिष्ट भोजन भी शरीर स्वस्थ हो तब तक ही आनंद देता है, वृद्धावस्थामें तो दात गिर जानेके कारण और पाचनशक्ति मंद हो जानेसे मई स्वादिष्ट चीज़ोंकी मात्र सुगंध ले कर ही संतोष मानलेना पड़ता है. इस तरह हम देख सकते हैं कि लौकिकमें जो वस्तु सुखदायी लगती है वही वस्तु दुःखका कारण भी बन सकती है. इसलिये लौकिक सुखोंको अन्ततः दुःख देनेवाले समझ कर उन्हें प्राप्त करनेमें समयको बरबाद करनेसे तो अच्छा है कि प्रभुसेवा-स्मरणादिरूप अविनाशी अलौकिक सुख प्राप्त करनेका यत्न किया जाय.

भगवदाश्रय-शरणागतिसे निश्चिंतता:

लौकिक सुख-दुःख पीडाकारी होते हैं यह हमने देखा. इस पीड़ासे छुटकारा पानेका एक ही उपाय है: कर्तापनेके अभिमान छोड़कर प्रभुके शरणमें चले जाना. "मैं करता हुं, मेरे कारण ही सब कुछ होता है" इस प्रकारके मनोभावको कर्तापनेका या लौकिक अभिमान कहा जाता है.

मन वाणी और देह से सर्वात्मना जो प्रभुकी शरणमें जाता है उसका लौकिक अहंकार नष्ट हो जाता है. उसमें अलौकिकता प्रकट हो जाती है. अब उसको "यह सब मैं ही करता हूं, मेरे कारण ही सब कुछ मेरा काम बनता-बिगड़ता है" इस प्रकारका अहंकार नहीं रह जाता. उसे ऐसा अनुभूत होने लगता है कि सब कुछ प्रभुका है और प्रभुकेलिये ही है. सब कुछ करने-करानेवाले प्रभु ही हैं. मैं भी जो कुछ कर रहा हूं, वह सचमुच मैं नहीं करता परन्तु प्रभु करवा रहे हैं. ऐसे साक्षीभावके कारण शरणागत जीव सुख-दुःखकी पीड़ासे परे हो जाता है. यह कैसे होता है उसे एक लौकिक उदाहरणसे समझें.

हमारे पास कोई वस्तु हो उसे जब हम किसी ओरको दे देते हैं तब उस वस्तुपरसे हमारा ममत्व हट जाता है. एक प्रकारसे तटस्थता-निस्पृहताका भाव उस वस्तुके प्रति आ जाता है. अब वो वस्तु रहे या न रहे, सलीकेसे उसे रखा जाय या तोड़-फोड़ दिया जाय या उसका कुछ भी हो जाय हमें उसका कोई हर्ष-शोक होता नहीं है. इसी प्रकार जिसने अपनी आत्मा सहित खुदका सब कुछ प्रभुके शरणमें रख दिया है उसे खुदके देहपर आनेवाले कष्ट या देह संबंधि परिवार, घर, संपत्ति आदि पर आनेवाले कष्ट "ये कष्ट मेरे उपर आ रहे हैं". ऐसा अनुभव ही नहीं होता है. क्योंकि प्रभुके शरणागत जीवको, प्रभुसेवा-स्मरणादिमें उपयोगी न हो ऐसे, देह परिवार आदिमें अपनापन ही नहीं लगता है.

इस बातको हम भगवद्भक्तोंके चरित्रों द्वारा सरलतापूर्वक

समझ सकते हैं. श्रीमहाप्रभुजीके शिष्य सूरदासजी जन्मसे ही अन्धे थे. कुंभनदासजी तो इतने गरीब थे कि उनके पास तिलक करनेकेलिये छोटासा दर्पणका टुकड़ा भी नहीं था. पद्मनाभदासजीको तो कुछ समय तक केवल चने फांक कर ही अपना निर्वाह करना पड़ा था. ऐसी विपरीत परिस्थिति होनेके बावजुद वे अपने-आपको सबसे सुखी मानते थे. परमभक्त प्रह्लादजीको मारनेकेलिये उनके राक्षस पिताने उनको पहाड़परसे फिंकवाया, भीलेसे मरवानेका प्रयास किया, हाथीके पैरों तले कुचलवाया, उबलते तेलकी कड़ाईमें फिंकवाया; और भी बहोत दुःख दिये, फिरभी प्रह्लादजीको कोई असर नहीं होती थी. अपने पिताके इन सारे क्रिया-कलापोंको प्रभुकी लीला जानकर प्रह्लादजी उनका आनंद ही लेते थे. परमवैष्णव जड़भरतजीको कुछ चोर, बलिदान करनेकेलिये पकड़ कर ले गये. किन्तु जड़भरतजीपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा. अतः श्रीभागवत्में कहा गया है:—

> सभी तरहकी विपत्तिओंमेंसे बचानेवाले भगवान्के चरणोंका आश्रय जिसने लिया हो ऐसे भगवद्भक्त स्वयंके मस्तक कटवानेका प्रसंग आनेपर भी व्याकुल नहीं होते यह कोई बहुत आश्चर्यकी बात नहीं.

इससे हम समझ सकते हैं कि जिन्होंने सभी तरहसे प्रभुको ही स्वयंका आश्रयरूप माना हो, ऐसे भक्तोंपर विकटसे विकट दुःख आनेपर भी वे उन दुःखोंको दुःखरूप नहीं मानते. ऐसा होनेका कारण यही है कि जो सर्वप्रकारसे प्रभुपर आश्रित या शरणागत हो गये हैं, उन लोगोंमें स्वतंत्ररूपेण कर्ता या भोक्ता होनेका अहंकार नहीं बच जाता. अतः वे जो कुछ भी कर्म करते हैं या कर्मफल भोगते हैं, उसके कारण होते सुख दुःख उन्हें असहनीय नहीं लगते. जबकि जो प्रभुके शरणागत या आश्रित नहीं होते उनको "मैं कर रहा हूं, मैं भोग रहा हूं" ऐसे स्वतंत्र कर्ता-भोक्ता होनेका अहंकार रहता ही है. परिणामतः सुख-दुःखकी हर्ष-पीड़ा भी उन्हें अनुभूत होती है.

प्रभुको याद नहीं करनेवालेको प्रभु भी याद नहीं रखते.

जिसके प्रति हमें लगाव होता है, स्वाभाविकतया उसकी याद बार-बार आती रहती है. जबकि जिसके प्रति अपने मनमें लगाव नहीं होता, उसकी याद हमें नहीं आती. इस बातको हम लोकव्यवहारद्वारा समझ सकते हैं. इसी तरह जो जीव निरंतर प्रभुको याद करता है, उसे स्वयंके (प्रभुके) प्रति लगाव है, ऐसा प्रभु भी समझते हैं. जिसके प्रति हमें लगाव होता है, उसके जीवनमें आती हर प्रकारकी परिस्थितिओंमें हम सहभागी बनना चाहते हैं. वैसे ही प्रभुका निरंतर स्मरण करनेवाले जीवोंके हर सुख-दुःखके प्रसंगोंमें प्रभु भी सहभागी बनते हैं. अतः प्रभु गीतामें आज्ञा करते हैं:—

> यद्यपि जीवमात्र मेरेलिये समान ही हैं. न कोई मेरेलिये शत्रु है और न मित्र परंतु जो भी जीव प्रेमात्मिका भक्तिसे मेरे सेवा-स्मरण करता है वह मेरेमें है और मैं उसमें.

अर्थात् प्रभु उस जीवको अपने-आपसे अभिन्न मानते हैं परंतु जो जीव प्रभुका आश्रय नहीं लेता, प्रभुका स्मरण नहीं करता, उसको प्रभु भी याद नहीं रखते हैं. ऐसे आसुरीजीवों केलिये भगवान् गीतामें आज्ञा करते हैं:

> मायाने जिनका ज्ञान हरलिया है ऐसे मूढ दुष्टकर्म करनेवाले नराधम आसुरीलोग मेरी शरणमें नहीं आते हैं. ये लोग जन्मों-जन्म आसुरी योनिको प्राप्त करते हुवे मुझे प्राप्त किये बिना ही अन्ततः अधोगतिको प्राप्त हो जाते हैं.

सुखमें भी प्रभुका स्मरण:

दुःखमें तो भगवान् सबको याद आते ही हैं. परंतु जो मात्र दुःखमें ही भगवान्को याद करते हैं और सुखमें भूल जाते हैं, उन्हें प्रभु स्वयंके भक्त नहीं मानते, बल्कि स्वार्थी मानते हैं. सच्चा भक्त तो भगवान् उसे ही मानते हैं कि जो सुखमें भी "ये सुख भगवान्ने दिया है" ऐसा सोचकर सदा भगवान्का

स्मरण करता है.

भगवत्स्मरणमें समय बंधन नहीं

सच्चा भगवद्भक्त तो प्रभुसेवा-स्मरणको नोकरी या मजदूरी जैसा कर्मकाण्ड नहीं मानता कि जिससे उसे यह लगे कि प्रातः मध्याह्न और सायं तीन बार प्रभुका नाम लिया ओर छुट्टी हुई. सच्चा भक्त तो वह है जिसे यह लगता है कि जिस कालमें या कार्यमें प्रभुका स्मरण नहीं हो पाया वो काल ही अकाल है ओर वो कार्य ही अकार्य है. प्रभुके सेवा-स्मरणमें द्विकाल त्रिकाल जैसे समयको बांधने वाले खुदका आलस्य और किसी प्रकारकी स्वार्थवृत्ति को ही प्रकट करते हैं. यही कारण है कि सेवा-स्मरण सदा ही करना चाहिये. यही भगवान् भी गीतामें आज्ञा करते हैं:

> अतः लौकिक-वैदिक सभी कार्योंको करते हुवे सभी कालमें मेरा स्मरण कर. इस प्रकारसे जिन्होंने अपने मन-बुद्धिको मेरेमें अर्पित कर दिये हैं वे मुझीको प्राप्त होंगे इसमें जरा भी संदेह नहीं करना चाहिये.

प्रभुस्मरण स्वाभाविकतासे:

सच्चा भगवद्भक्त तो जगत्में घटित होती प्रत्येक घटनाको प्रभुकी लीला ही जानता और मानता है. अतः सुखद या दुःखद कोई भी घटना उसकेलिये तो भगवल्लीलारूप एकसमान ही होती है. मित्र या शत्रु, निंदा या प्रशंसा, ठंडी या गर्मी, मान या अपमान में उसे कोई भेद दिखलायी नहीं देता. ऐसा भगवद्भक्त किसी उपाधिके कारण प्रभुका स्मरण करता हो ऐसा नहीं होता. जैसे श्वासोच्छ्वास जीवमात्रमें स्वाभाविकतया चलता रहता है, वैसे भगवत्स्मरण, भक्तके जीवनमें स्वाभाविकतया ही चलता रहता है. इसका श्रेष्ठ उदाहरण अर्जुन है:—

> एक समय पार्वतीजीने कृष्णभक्तके दर्शनकेलिये शिवजीको प्रार्थना की. परमभक्त अर्जुनके दर्शन करानेकेलिये शिवजी पार्वतीजीको हस्तिनापुर ले कर

> आये. महलमें जाते हुवे खबर मिली कि अर्जुन सो रहा है. अर्जुनको खुद जगाना उचित न मानकर शिवजीने भगवान् श्रीकृष्णको याद किया. तब भगवान् पधारे और शिव-पार्वतीके आगमनकी खबर देनेकेलिये अर्जुनके शयनखंडमें गये. बहोत समय व्यतित हो जानेपर भी भगवान् वापस नहीं पधारे, अतः शिवजीने ब्रह्माजीको बुलाया. ब्रह्माजी भी भगवान् कृष्णकी तरह ही भीतर गये सो बाहर आये नहीं. तब शिवजीने नारदजीको याद किया. परंतु जो भी कोई भीतर जाता वह वापस नहीं आता था! यह देखकर अन्तमें शिव-पार्वती स्वयं ही शयनखंडमें पधारे. वहां जाकर देखा तो अर्जुनके रोम-रोममेंसे 'श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण' ध्वनि निकल रही थी. जबकि अपने सखाकी भक्तिसे रोमांचित होकर श्रीकृष्ण अर्जुनके चरण दबा रहे थे! चतुर्मुख ब्रह्मा वेदोच्चार कर रहे थे; और नारदजी वीणावादन करते-करते भगवद्गुणानुवाद कर रहे थे! अर्जुनकी ऐसी कृष्णमयताके दर्शन करके शिव-पार्वती धन्य हो गये.

भगवन्नाम इतनी तन्मयतासे लिया जाय तब कोई बात बनती है.

शरणागतरक्षक भगवान्:

जिन्हें प्रभुने स्वयंके माने हैं वे अगर प्रभुकी शरणमें जाते हैं तो प्रभु अवश्य उनका रक्षण करते हैं. यह प्रभुका स्वभाव है. भक्तोंके चरित्रोंके अवलोकनसे यह बात सरलतासे समझमें आ पाती है. द्रौपदीको चीरदान, व्रजवासिओंपर इन्द्रके क्रोधित होनेपर गिरिराजधारण, पांडवोंमें अर्जुनके सारथि बनना, नरसिंह महेताकी पुत्रीके विवाहमें भातकी रस्म निभाना, उग्रसेनकी यादवी राज्यसभामें साधारण सदस्यकी तरह उपस्थित रहना, ऐसे अगणित दृष्टांत दिखाये जा सकते हैं. अतएव श्रीमहाप्रभुजी 'विवेकधैर्याश्रय' ग्रन्थमें भगवदाश्रयकी महत्ताका वर्णन करते हुवे आज्ञा करते हैं:—

सर्वमाश्रयतो भवेत्

अर्थ: प्रभुका आश्रय लेने मात्रसे भक्तके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं.

अतः भगवान् भी आज्ञा करते हैं:—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥

अर्थ: (मेरे शरणमें आनेमें प्रतिबंध करनेवाले) सभी धर्मोंका त्याग करके एकमात्र मेरी ही शरणमें आ जाओ. मैं तुम्हें हर पापोंसे (अर्थात् मेरी शरणमें आते समय जितने भी विघ्न आयेंगे उससे मैं तुम्हे) मुक्त कराउंगा; तुम चिंता मत करो.

यह कह कर तो भगवान्ने शरणागतिके आगे सभी, लौकिक वैदिक धर्मोंकी गौणता प्रकट कर दी है. अतः भगवत्कार्य ही मुख्य कार्य होता है जबकि अन्य लौकिक-वैदिक कार्य अमुख्य साबित होते हैं.

मांगना यह व्यापारिक वृत्ति है:

प्रभुके सामर्थ्य और दयालुता का ऐसा वर्णन पढ़-सुनकर कई बार लोग स्वयंपर आ पड़नेवाले छोटे-बड़े कष्टोंसे डर कर किसी तरहकी मेहनत किये बिना उन कष्टोंसे छुटकारा पानेकेलिये प्रभुसे मांगनेका अविवेक कर बैठते हैं. ऐसे लोगोंको, परन्तु, सोचना चाहिये कि प्रभुके सेवक हम हैं या हमारे सेवक प्रभु हैं? प्रभु तो सर्वज्ञ हैं, वे क्या हमारे कष्ट नहीं जानते? प्रभुका आश्रय लेकर क्या हम प्रभुपर कोई उपकार करते हैं कि जिसकी किमत चुकानेकेलिये भगवान् हमारे पीछे-पीछे फिरते रहें!

इससे हमें समझना चाहिये कि प्रभु अपने अलौकिक स्वामी हैं. वे सब कुछ जानते हैं. इसलिये भक्तके कष्ट भी उनसे छिपे नहीं हैं. प्रभु भक्तका जो कुछ भी करते हैं वह उसके अच्छेकेलिये ही करते हैं. अतः प्रभुमें पूर्ण विश्वास रखते हुवे, प्रभुसे कुछ भी मांगनेका विचार छोड़ देना चाहिये. इस विषयमें प्रह्लादजीके वचन मनन करने योग्य हैं. हिरण्यकशिपुका वध करनेके बाद प्रभुने जब प्रसन्न होकर प्रह्लादको वरदान मांगनेकेलिये

कहा. तब प्रह्लादने जो उत्तर भगवान्को दिया वह मनुष्यमात्रको हृदयमें अंकित कर रखने जैसा है. प्रह्लाद कहते हैं:—

हे प्रभु! मुझमें आपके भक्त बननेके लक्षण हैं या नहीं उसकी परीक्षा करनेकेलिये ही आप मुझे वरदान मांगनेकेलिये प्रेरित कर रहे हैं. क्योंकि विषय-लौकिक सुख तो पुनः-पुनः जन्म-मरणके चक्करमें उलझानेवाला है, जबकि आप तो स्वयंके भक्तोंका हमेंशा अच्छा ही चाहते हो. अतः आपके भक्त लौकिक सुखभोगमें डुबे रहें यह तो आप सोच भी कैसे सकते हो? अतः मेरी परीक्षा लेनेके अलावा अन्य कोई भी हेतु आपकी वरदान मांगनेकी आज्ञाके पीछे नहीं है. हे प्रभु! जो सेवक आपके पाससे अपनी ईच्छाओंकी पूर्ति करवाना चाहता है, वह तो सेवक ही नहीं है. वह तो (सेवाके बदलेमें कुछ मिले ऐसी वृत्तिवाला) बनिया है. जहां जो "मैं इसकी कामना पूर्ण करूं तो यह मेरी सेवा करेगा" ऐसी भावना रखकर किसीकी कामना पूरी करता हो वह तो सच्चा स्वामी भी नहीं हो सकता. परंतु मैं तो आपका निष्काम सेवक हूं और आप मेरे निरपेक्ष (जिन्हे सेवकके पाससे किसी भी प्रकारकी अपेक्षा न हो ऐसे) स्वामी हो. जैसे राजा और उसके कर्मचारिओंका स्वामि-सेवक-संबंध, राजाका काम करें तो कर्मचारिओंको वेतन मिले ऐसा परस्पर स्वार्थपूर्ण होता है ऐसा मेरा और आपका संबंध, नहीं है. इसलिये अगर आप मुझे वरदान देना चाहते ही हो तो ऐसा वरदान दो कि मेरे मनमें कभी भी किसी भी प्रकारकी कामना न उत्पन्न हो. क्योंकि जिस मनुष्यके मनमें कामना होती है उसके धर्म-बुद्धि-सत्य-तेज-लज्जा यह सब नष्ट हो जाते हैं. जब कोई अपनेमें रही हुयी सर्व कामनाओंका

त्याग करता है, तब भगवद्भक्ति प्राप्त करता है.

प्रह्लादके ऐसे सुंदर वचनोंको सुनकर भगवान् प्रसन्न हुवे और बोले :—

> हे प्रह्लाद! तेरे जैसे मेरे अनन्य भक्त मेरे पाससे इहलोक या परलोक संबंधी कोई भी कामना कभी भी नहीं करते.

अतः भगवद्भक्तोंको लौकिक सुखदुःखकी पीड़ामें फंसानेवाली कामनाकी वृत्तिको त्याग कर भगवदाश्रय करना चाहिये. श्रीमहाप्रभुजी चतुःश्लोकी ग्रंथमें आज्ञा करते हैं :—

> *यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि।*
> *ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकै र्वैदिकैरपि॥*
> *अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः।*
> *स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः॥*

अर्थः यदि गोकुलाधीश श्रीकृष्णको जिसने सर्वरीतसे हृदयमें पधरा लीये हैं तो उसे लौकिक या वैदिकसे भी दूसरा क्या पाना बाकी रह जाता है वह कहो! अतः सर्वरीतसे हंमेशा गोकुलेश्वर श्रीकृष्णके सेवा-स्मरण करते रहना चाहिये, उसे कभी भी छोड़ने नहीं चाहिये ऐसा मेरा मानना है.

भगवदाश्रय सर्वथा (=सब प्रकारसे) :

छोटा बालक अपनी मातासे दूर नहीं रह सकता. माता जरा भी इधर-उधर हुयी कि वह डरकर रोने लगता है और दोड़ कर माताके पास पहुंच जाता है. बालकके ऐसे होनेका कारण, उसके मनका सर्वदा=निरन्तर मातामें लगा हुवा होना ही होता है. वस्तुतः तो बहुत छोटी वयमें बालकको माताके अतिरिक्त अन्य किसीका भान ही नहीं होता. छोटा बालक जैसे माताके आश्रयमें रहता है वैसे ही भगवानूके अंशरूप होनेसे पुत्ररूप जीवको भी सदा भगवदाश्रय रखना चाहिये, यह सिद्धांत हम अबतकके विवेचनसे समझे.

प्रभुका आश्रय सर्वदा करना जैसे आवश्यक है वैसे ही

सर्वथा=सब प्रकारसे अर्थात् मन वाणी और कायासे करना भी इतना ही आवश्यक है. जो सर्वदा और सर्वथा ऐसे दोनो रीतिसे प्रभुका आश्रय करता है, वह जीव कृतार्थ हो जाता है. यहां मन वाणी और काया=देहसे किये जाते भगवदाश्रयके स्वरूपको समझना आवश्यक है.

१. मनसे भगवदाश्रय : प्रभु बहुत दयालु हैं, शरणमें आनेवाले जीवका रक्षण करनेवाले हैं, सबसे अधिक समर्थ हैं, वस्तुमात्रमें व्याप्त हैं, सर्वकर्ता हैं, अच्छे-बुरे सब प्रकारके फलोंको देनेवाले हैं आदि प्रभुके धर्मोका विचार करके, प्रभुके अतिरिक्त मेरा सच्चा आधार अन्य कोई नहीं हैं, ऐसा भावन/मनन करते रहनेको मनके द्वारा भगवदाश्रय किया कहा जाता है.

२. वाणीसे भगवदाश्रय : "श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक तथा पालक हैं" ऐसे अर्थवाले अष्टाक्षरमहामंत्रका वाणीसे निरंतर अनुसंधान बनाये रखना वाणीकेद्वारा भगवदाश्रय किया कहा जाता है.

३. कायासे भगवदाश्रय : मन और वाणी से आश्रय करनेके साथ-साथ अपनी सर्व इन्द्रियोंका उपयोग प्रभुसेवामें करना, काया या देह केद्वारा भगवदाश्रय है.

इन त्रिविध भगवदाश्रयोंकी महत्ताका वर्णन करता हुवा श्रीभागवत्में यमराजका कथन है. यमराज स्वयंके सेवकोंको कहते हैं :—

> जिनकी जिह्वा प्रभुका नाम नहीं लेती, जिनके चित्त प्रभुका स्मरण नहीं करते, जिनके सिर प्रभुको नमन न करते हों ऐसे भगवत्सेवा न करनेवाले दुष्टोंको ही तुम मेरे पास लाया करो. क्योंकि मेरी शक्ति, — संसारमें लिप्त प्रभुसे बहिर्मुख लोगोंपर ही चलती है, भगवद्भक्तोंपर नहीं.

प्रभुकी कृपा जिनपर है वे तो बिना किसी प्रेरणा लालच या भय के प्रह्लादजीकी तरह स्वाभाविकतासे प्रभुके शरणमें जा कर उत्तम फलको प्राप्त करते हैं. जिनमें, परंतु, ऐसी स्वाभाविक रुचि पनपी न हो वे तो यदि संकल्पपूर्वक प्रभुके शरणमें जाते हों तभी भगवदाश्रयसे उनका कल्याण हो सकता है.

भगवदाश्रयकी दृढ़ताके उपाय :

(१) माहात्म्यज्ञान (२) जीवस्वरूपज्ञान (३) अन्याश्रयत्याग (४) निःसाधनताभावन (५) दीनता (६) विवेक (७) धैर्य ये भगवदाश्रयको दृढ़ करनेके कुछ उपाय हैं.

१. माहात्म्यज्ञान : जब तक प्रभुके अलौकिक स्वरूप और चरित्रों का अर्थात् माहात्म्यका ठीक-ठीक ज्ञान हमें न हो, तब तक हमारा मन प्रभुकी ओर मुड़ नहीं पाता. अतः आश्रयको दृढ़ करनेकी इच्छा रखनेवालेको प्रभुके स्वरूप गुण और लीला (चरित्र/कर्म)का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके उसका निरंतर चिंतन करते रहना चाहिये.

२. जीवस्वरूपज्ञान : जीवमात्र भगवान्‌के अंश-दास हैं. भगवान्‌की तुलनामें वे अत्यंत तुच्छ और असमर्थ हैं. इस समग्र जड़-जीवात्मक सृष्टिकी उत्पत्ति प्रभुने स्व-क्रीड़ाकेलिये स्वयंमेंसे ही की है. अतः जगत्पिता परमात्माके आश्रयमें जाकर उनके सेवक बनकर जीवन व्यतित करना ही जीवमात्रका प्राथमिक धर्म है. जीवस्वरूपके इस प्रकारके ज्ञानसे हम अपने कर्तव्यका निर्धारण कर सकते हैं.

३. अन्याश्रयत्याग : इसका विस्तारसे निरूपण अगले प्रकरणमें किया जायेगा.

४. निःसाधनताभावन : प्रभुप्राप्तिके अनेक उपायोंका निरूपण अपने शास्त्रोंमें मिलता है. प्रभुकी कृपा-इच्छाके बिना कितने ही साधन करनेपर भी कुछ नहीं होता. भगवान् स्वतः ही जिस जीवके सामने प्रकट होनेकी इच्छा करते हैं वही जीव प्रभुके दर्शन या भक्ति प्राप्त कर सकता है. अतः प्रभुसेवा-स्मरण-कीर्तन आदि जो कुछ भी साधन हम कर रहे हैं, वह हम अपने बलबूतेपर कर रहे हैं ऐसा भाव न रखकर प्रभु ही वह सब करा रहे हैं ऐसा भाव रखना चाहिये.

५. दीनता : जैसे एक रजाके साथ उसके कर्मचारी तथा प्रजा नम्रता तथा आदर पूर्वक व्यवहार किया करते थे उसी प्रकार शरणागत जीवको भी राजाधिराज प्रभुके सामने नम्रता तथा आदर पूर्वक व्यवहार

करना चाहिये. इसीको 'दीनता' भी कहा जाता है.

दीनता लानेका उपाय : प्रभु और जीव के स्वरूपके ज्ञानसे दीनता आती है. परंतु दीनता प्राप्त करनेकेलिये मात्र इतना पर्याप्त नहीं है. दीनताभावके विरोधी अपने मनके विकारों या दुर्वृत्तिओं का त्याग भी आवश्यक है. अभिमान ईर्ष्या शंकाशीलता हठाग्रह अधीरता असहनशीलता लालच जैसे मनोविकारोंको अपने मनमेंसे जब तक दूर नहीं किया जाता तब तक सच्ची दीनता नहीं मिल पाती. व्यवहारमें भी हम देख सकते हैं कि अभिमान आदि उपरोक्त दुर्भावोंके कारण लोग वस्तु, परिस्थिति, सामने उपस्थित व्यक्ति अथवा स्वयं का भी मूल्यांकन भलीभांति कर नहीं पाते. अतः यदि ऐसे मनोविकार हमारे भीतर घर कर गये हों तो भगवत्स्वरूप या जीवस्वरूप का ज्ञान भी हमें यथार्थरूपसे कहांसे मिल पायेगा ? और उसके बिना दीनता कैसे प्राप्त हो पायेगी !

६. विवेक : दृढ़भगवदाश्रयप्राप्तकरनेकीइच्छारखनेवालोंकेलिये — यह समग्र सृष्टि भगवान्‌की लीलाभूमि है. यहां जहां जब जो और जैसे होता है वह भगवान्‌की उस प्रकारकी इच्छाके कारण ही होता है. भगवान् स्वयंके भक्तका हमेंशा हित ही विचारते हैं — ऐसा भावन करते हुवे प्रत्येक विषयमें प्रभुकी इच्छा या लीला का विचार कर विवेक रखना यह भगवदाश्रयको दृढ़ करनेकी इच्छा रखनेवालोंकेलिये बहुत ही आवश्यक है.

७. धैर्य : मनुष्यके जीवनमें अनेक प्रकारके दुःख आते ही रहते हैं. मनुष्य यदि इन सब दुःखोंको मनपर लेने लग जाय तो न वह लौकिक जीवनमें सुखी रह पायेगा न अलौकिकमें ही. अतः श्रीमहाप्रभुजी 'विवेकधैर्याश्रय' ग्रंथमें आज्ञा करते हैं— कि भगवद्भक्तके सारे कार्य भगवदिच्छासे ही होते हैं ऐसा विवेक रखकर सहजतासे जिन दुःखोंका प्रतिकार हो पाता हो उन दुःखोंका प्रतिकार करते हुवे बाकीके दुःखोंको अवश्यंभावी — ऐसा तो होकर ही रहेगा — ऐसा सोच कर अर्थात् भगवदिच्छा मान कर स्वीकार लेने चाहिये. किसी भी परिस्थितिमें विचलित न होना, इसे ही श्रीमहाप्रभुजी 'धैर्य' कहते हैं.

प्रभु कभी भी अपने भक्तका अहित नहीं करते हैं. परन्तु हम इस बातको समझ नहीं पाते हैं. जिस प्रकार छोटा बालक जलते हुवे दीयेसे आकर्षित हो कर उसे पकड़ने जाय और दीयेको बालक पकड़ेगा तो जल जायेगा ऐसे उसके हितके विचारसे यदि दीयेको बुझादिया जाय तो बालकको निश्चय ही दुःख होगा. परंतु ऐसा उसके अज्ञानके कारण होता है. बालक अपने हित-अहितको समझता नहीं है. उसी प्रकार हम सब जीव भी अज्ञानी हैं. यही कारण है कि जीवनमें आते छोटे-मोटे कष्टोंसे दुःखी हो जाते हैं. परंतु जैसे बालक जब बड़ा होता है और सोचता है तब उसे समजमें आता है कि उस समय यदि दीयेको बुझाया न जाता तो वह जल जाता. उसी प्रकार हमें भी समजना चाहिये कि भक्तों पर यदि दुःख आते हैं तो वो उसे बड़े दुःखोंसे बचानेकेलिये ही आते हैं. अतः वे वस्तुतः दुःख ही नहीं होते हैं. दवाई कड़वी जरूर लगती है पर जान बचाती है इस कारणसे हम दवाईका सेवन करते हैं उसी प्रकार हमारे उपर आने वाले दुःखोंके विषयमें भी सोच कर धैर्य धारण करना चाहिये.

उपरोक्त उपाय करते हुवे यदि भगवदाश्रय किया जाय तो भगवत्कृपासे दृढ़ आश्रय सिद्ध हो सकता है. आश्रयकी महत्ताका वर्णन करते हुवे श्रीमहाप्रभुजी 'विवेकधैर्याश्रय' ग्रंथमें आज्ञा करते हैं:

> कलियुगमें प्रभुप्राप्तिके कर्म ज्ञान और भक्ति रूपी सभी मार्ग जब कष्टसाध्य बन गये हैं, तब सभी निःसाधन जीवोंकेलिये सदा कल्याणकारी ऐसा शरणमार्ग अनुसरणीय बन जाता है.

विशेषांचनकेलिये
षोडशग्रन्थान्तर्गत श्रीकृष्णाश्रय तथा श्रीविवेधैर्याश्रय.

१२. अन्याश्रयत्याग

अन्याश्रय:

श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य किसी भी देवी-देवताके चला कर दर्शन पूजा व्रत नामजप यात्रा प्रार्थना आदि करने या करवाने को पुष्टिभक्तिमार्गमें 'अन्याश्रय' कहा जाता है. पुष्टिभक्तिमार्गमें अन्याश्रय करना सबसे बड़ा अपराध है.

'अन्याश्रय' का अर्थ:

'अन्याश्रय' शब्द दो शब्दोंसे बना हुवा है: अन्य + आश्रय. इन दोनो शब्दोंका तात्पर्य भलीभांति समझ लेना चाहिये.

(१)'अन्य' अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णके सिवा जो कुछ भी हो वह; अथवा श्रीकृष्णको छोड़ कर अन्य सभी देवी-देवता.

(२)इसी तरह 'आश्रय' अर्थात् किसी भी तरहकी इच्छाकी पूर्तिकेलिये, या अन्य किसी भी कारणवशात्, किसी देवी-देवताका आसरा लेना; अथवा किसीको अपना सर्वस्व या इष्टदेव मानना.

'आराध्य', 'इष्ट', 'उपास्य', 'पूजनीय', 'भजनीय', 'सेव्य', 'अर्च्य' आदि अनेक शब्द लगभग समान अर्थमें प्रयुक्त होते हैं.

इष्टदेव:

भक्त भक्ति करनेकेलिये जिसे सबसे अधिक पसंद करता हो, ऐसे देवी या देवता को उस भक्तका 'इष्टदेव' कहा जाता है. जैसे कि शैव संप्रदायके अनुयायिओंके इष्टदेव शिव होते हैं. शाक्त संप्रदायके अनुयायिओंकी इष्टदेव शक्ति-दुर्गा-गौरी होती हैं. वैसे ही वैष्णव संप्रदायके अनुयायिओंके इष्टदेव श्रीकृष्ण अथवा उनके अवतार ही होते हैं. एकान्ती भक्तिसंप्रदायोंकी सनातन परंपरामें इष्टदेवको छोड़ कर अन्यदेवका आश्रय करना अमान्य ही रहा है. इसीलिये एकान्ती भक्तिसंप्रदायके अनुयायीका चला कर अर्थात् स्वेच्छया किसी अन्य संप्रदायके देवताके साथ दर्शन-पूजनादिके व्यवहारको निभाना 'अन्याश्रय' अथवा 'अनन्यताका भंग' कहा

जाता है. इसे भक्तिमार्गमें दोषरूप माना जाता है.

पुष्टिमार्ग भी भक्तिमार्ग है. पुष्टिभक्तिमार्गमें परब्रह्म श्रीकृष्ण इष्टदेव हैं, तभी तो श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी भी देवी-देवताके चला कर दर्शन-पूजनादिको दोषरूप अन्याश्रय माना गया है. यहां यह समझना आवश्यक है कि अन्याश्रय कौन-कौनसी परिस्थितियोंमें हो सकता है.

अन्याश्रय कौनसी स्थितिमें?

शास्त्रमें बताये गये विधान या परंपरा के अनुसार अपने इष्टदेवकी आराधनाकेलिये विशेष रूपमें जो कुछ किया जाता है, ऐसा कुछ यदि अपने इष्टदेवके अतिरिक्त किसी भी देवी-देवताके साथ करनेमें आता है तो उसे 'अन्याश्रय' कहा जाता है. क्योंकि समाजमें कोई व्यक्ति जैसे किसीसे मिलने जाता हो अथवा किसीके घर जाता हो अथवा किसीके शुभ-अशुभ प्रसंगोंमें सदा उपस्थित रहता हो तो उन लोगोंके साथ उस व्यक्तिके अच्छे संबंध हैं अथवा अच्छे संबंध बनाना चाहता है, ऐसा अनुमान होता है. वैसे ही एक देवको अपना इष्ट माननेवाला यदि चला कर अन्य किसी देवके दर्शन-पूजन आदि करने जाता है तो वैसा करनेवालेकी श्रद्धा भक्ति अथवा उसका आश्रय उस अन्य देवके बारेमें है; अथवा ऐसा करते-करते हो जायगा, ऐसा अनुमान भी सहजतासे हो सकता है.

घर-परिवार अथवा समाज में किसके साथ कैसा बरताव करना, यह हम जनमते ही सीख नहीं जाते. लोग परस्पर किस प्रकारसे व्यवहार करते हैं, यह देख कर धीरे-धीरे हम भी अपने सामाजिक व्यवहार समझ पाते हैं. परंतु ऐसे सामाजिक व्यवहारोंके आधारपर अपने इष्टदेवके साथ किस प्रकारका व्यवहार करना यह समझा नहीं जा सकता है. क्योंकि यह विषय समाजका नहीं है किन्तु जिस शास्त्रने जिस देवके स्वरूप और उसकी उपासना-भक्ति करनेकी प्रेरणा हमें दी है, उस शास्त्रका विषय है. शास्त्रमें नीचे दिखलाये गये जैसे अनेक प्रकार आराधना-भक्तिके

वर्णित हैं :—

> स्नापन (देवमूर्तिको नहलाना), वस्त्र, अलंकरण (शृंगार), पुष्प, पत्र, नैवेद्य (भोग), धूप, आरती आदिसे पूजन-उपचार, देवके दर्शन, नमन, परिक्रमा, ध्यान, प्रार्थना, स्तुति आदि, इष्टदेवके तीर्थक्षेत्रोंकी यात्रा, इष्टदेवका प्रसाद-नैवेद्य लेना, इष्टदेवके माहात्म्य या अवतारचरित्र के निरूपक पुराण-कथाओंका श्रवण, भजन आदिका श्रवण, इष्टदेवके उत्सव या पर्व पर व्रत-उपवास (विशेष तिथि वार महिना में) रखने या करवाने, मनौति माननी, इष्टदेवसंबंधी होम-हवन मंत्रजाप आदि करने अथवा कराने, इष्टदेवसंबंधी कंठी-तिलक-छापा धारण करने, इष्टदेवसे संबंधवाले डोरे-धागे-तावीज मुंदरी आदि पहनने.

ऐसे शास्त्रीय तथा लोकप्रचलित प्रकार अपने-अपने इष्टदेवके प्रति अपने आश्रय अथवा भक्तिको व्यक्त करनेके उपाय हैं. दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो उपरोक्त एक अथवा अनेक प्रकारोंका अनुसरण करनेवाले व्यक्तिकी श्रद्धा-भक्ति उन-उन देवोंमें है ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है. इसलिये जो कोई पुष्टिमार्गीय वैष्णव उपरोक्त कोई एक अथवा अनेक प्रकारोंकेद्वारा अन्य देवी-देवताओंकी आराधना-भक्ति करता है, तो वह अन्याश्रय करता है, यह स्पष्टरूपसे कहा-समझा जा सकता है. पुष्टिमार्गीय वैष्णवको अन्य देवी-देवतासंबंधी उपरोक्त सर्व व्यवहारोंका त्याग करना अनिवार्य है. अन्याश्रयका पूर्ण रूपसे त्याग किये बिना हम पुष्टिमार्गीय नहीं बन सकते. दूसरे शब्दोंमें कहें तो पुष्टिमार्गमें आ कर जो अन्याश्रय करता है, वह सच्चे अर्थमें पुष्टिमार्गीय ही नहीं है. अतः अन्याश्रयका त्याग तो भक्तिकी उच्च अवस्थामें ही आवश्यक है प्रारंभिक अवस्थामें नहिं— ऐसा माननेवाले अपने आपको धोखा दे रहे हैं यह निःसंकोच रूपसे कहा जा सकता है.

अन्य देवी-देवताओंका अनादर नहीं:

अन्याश्रयका त्याग करनेके शास्त्रीय उपदेशको अन्य

देवी-देवताओंके अपमान अथवा अनादरके अर्थमें नहीं समझना चाहिये. क्योंकि व्यवहारमें भी हम देख सकते हैं कि एक नोकर जिसकी नोकरी करता है उसीको मालिक मानता है, एक स्त्री जिस पुरुषसे विवाह करती है उसे ही अपना पति मानती है, एक संतती जिस दंपतिने उसे जन्म दिया है उन्हे ही सगे माता-पिता मानती है. यदि किसी अन्यके नोकरको कोई कहे कि तू इसकी नोकरी कर रहा है तो क्या हुवा, तू मुझे भी मालिक मान; नहीं तो तू मेरा अपमान कर रहा है! तो ऐसा कहनेवालेको क्या हम पागल नहीं समझेंगे! इस तरह किसी एकको ही मालिक पति अथवा माता-पिता माननेका अर्थ दूसरे सभीका अनादर करना है ऐसा कभी भी स्वीकारा नहीं जा सकता. इसी तरह "किसी एकको ही अपने इष्ट अथवा आराध्य देव मानना चाहिये" इस ऐकान्तिक भक्तिके शास्त्रीय सिद्धान्तको अन्य देवी-देवताओंके अनादरके अर्थमें नहीं लेना चाहिये.

आदरणीय और भजनीय:

पुराने जमानेमें प्रधानमंत्रि मंत्रि सेनापति आदि सभी राजाके अनुचर होनेके कारण प्रजाकेलिये समानरूपसे आदरणीय गिनेजाते थे, परंतु जितना आदर प्रजाका राजाकेलिये होता था उतना किसी अन्यके प्रति नहीं होता था. खुदकी तुलनामें राजाके प्रति प्रजाका अधिक आदरभाव देखकर राज्यके किसी अधिकारीको बुरा भी नहीं लगता था. क्योंकि जैसे राजा प्रजाकेलिये सर्वोपरी हुवा करता था उसी प्रकार राज्यके अधिकारीयोंकेलिये भी राजा सर्वोपरी हुवा करता था. इसी प्रकार सभी देवी-देवता भगवान् श्रीकृष्णके आधिदैविक अंश होनेके कारण भक्तोंकेलिये समानरूपसे आदरणीय होने चाहिये परंतु परम आदरणीय तथा भजनीय तो एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही. जैसे एक भक्त दूसरे भक्तको देखकर प्रसन्न होता है, वैसे ही एकमात्र श्रीकृष्णका आश्रय करनेवाले वैष्णवको देखकर सभी देवी-देवता भी प्रसन्न ही होते हैं.

जैसे वैष्णव एक-दूसरेको मिलते हैं तब भगवत्स्मरण करते

हैं वैसे ही किसी तीर्थस्थलमें अथवा रास्तेमें कहीं भी शास्त्रीय देवी-देवताओंके मंदिर मिल जायें तो उन्हें आधिदैविक भगवदंश जानकर नमस्कारपूर्वक भगवत्स्मरण करना चाहिये. यह उनका आदर ही है.

इष्टदेवकी आराधनाके जो-जो प्रकार पहले बताये गये हैं, ऐसे किसी भी प्रकारसे अन्य देवी-देवताओंका आराधन करना वैष्णवकेलिये आवश्यक नहीं है.

श्रीकृष्णके पास किसे जाना:

अन्य देवी-देवता अल्प सामर्थ्यवाले हैं, इसलिये उनके द्वारा मिलते फल भी निम्न तथा नश्वर होते हैं. भगवान् श्रीकृष्ण तो देवोंके भी देव हैं, सर्वसामर्थ्यवान हैं. उनके द्वारा मिलता फल अविनाशी होता है. इसलिये धनसंपत्ति जैसे तुच्छ-नाशवान फलोंकी जिन्हे कामना है उन्हे ऐसे तुच्छ फल देनेवाले, अल्प सामर्थ्यवाले देवी-देवताओंके पास जाना चाहिये; और जिन्हें प्रभुसेवा-भक्ति जैसे उच्च अविनाशी फलोंकी कामना हो उन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें जाना चाहिये.

अन्याश्रय प्रशंसापात्र नहीं है:

अन्याश्रय प्रशंसाके योग्य नहीं हैं इस आशयका निरूपण करते हुवे भगवान् गीतामें आज्ञा करते हैं:

> विभिन्न प्रकारके प्रकारके लौकिक विषयोंका भोग करनेकी कामनाओंसे बुद्धिके नष्ट होनेपर ही लोग व्रत-मंत्रजप-पूजन जैसे नियमोंको धारण करके अन्य देवी-देवताओंको भजने लग जाते हैं.
>
> भ्रष्टबुद्धिवाले ऐसे लोग, श्रद्धापूर्वक उन देवोंकी आराधना करने पर उन देवोंसे फल प्राप्त करते हैं. परंतु वह फल देनेकी शक्ति उन देवोंको मैंने ही दी है.
>
> देवोंका पूजन करनेवाले अल्पबुद्धिवाले उन लोगोंको

मिलता फल नश्वर ही होता है.

इसलिये भगवान् आगे आज्ञा करते हैं:—

देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।

अर्थ: अन्य देवोंको पूजनेवाले लोगोंको देव ही प्राप्त होते हैं; जबकि अनन्यभावसे मेरा भजन करनेवाले मेरे भक्त मुझे ही प्राप्त करते हैं.

इससे हम समझ सकते हैं कि एक बार भगवान्‌कि शरणमें गया हुवा भक्त यदि अन्याश्रय करता है तो यह भगवान्‌से सहन नहीं होता. भगवान्‌को छोड़नेवालोंको भगवान् भी छोड़ देते हैं.

अन्याश्रय करनेके कारण:

(१) असंतोष (२) भय (३) अविश्वास (४) प्रभुके स्वरूपका अज्ञान (५) दुःसंग और (६) स्वसिद्धान्तका अज्ञान. खास करके ये छह कारण होते हैं अन्याश्रय करनेके पीछे.

(१) असंतोष: जिस व्यक्तिके जीवनमें संतोष नहीं होता है उसे, कितनी हि धनसंपत्ति या प्रतिष्ठा क्यों न मिल जाय वह अपने आपको सुखी नहीं मान पाता. ऐसे लोग प्रभुके पास अपना दुःख रो कर अपनी इच्छापूर्तिकेलिये प्रभुसे प्रार्थना करनेका अविवेक कर बैठते हैं; और जब उनकी इच्छा तुरंत पूर्ण नहीं होती है तो वे अन्य देवी-देवता अथवा ग्रह-मंत्रके चक्करमें पड़ कर अन्याश्रय कर बैठते हैं.

ऐसे लोगोंको समझना चाहिये कि प्रयत्न करनेपर भी जब वांछित वस्तु नहीं मिल पाई तब भगवान्‌की ऐसी ही इच्छा होगी. पूर्व जन्मके अच्छे-बुरे कर्मोंका संचित फल मनुष्यको इसी जन्ममें भुगतना पड़ता है. इसलिये सहज प्रयत्न करनेके बाद भी यदि परिस्थिति बदलती न हो तब हमारे पूर्व जन्मका ही ये फल है अथवा ऐसी ही भगवान्‌की इच्छा है ऐसा स्वीकारके व्यर्थके दुराग्रह तथा हठ का त्याग करके जो परिस्थिति है वह भगवान्‌की हि इच्छा है ऐसा विश्वास रखकर धीरज रखनी चाहिये.

किसी भी परिस्थितिमें अन्याश्रय तो नहीं ही करना चाहिये. क्योंकि यदि प्रभुकी वैसी ही इच्छा हुई तो उसके विरुद्ध अन्य देवी-देवता भी कुछ कर नहीं पायेंगे. इसलिये वैष्णवको संतोष और धैर्य कभी भी छोड़ने नहीं चाहिये.

(२) भय: कुलपरंपरासे जो लोग वैष्णव नहीं होते और वैष्णव होनेसे पहले अन्य देवी-देवताओंको मानते हैं ऐसे कई लोग वैष्णव बननेके पश्चात् भी अन्य देवी-देवताओंका पूजन चालु रखते हैं. उनके मनमें यह भय होता है कि वैष्णव होनेके बाद; अब यदि देवी-देवताओंका पूजन बंद कर देंगे तो पाप लगेगा अथवा उन देवी-देवताओंका अनादर होगा अथवा वे क्रोधमें आकर अनिष्ट करेंगे. ऐसे ही किसी भयसे कई लोग कुलदेवी कुलदेव लक्ष्मी सरस्वती गणेश हनुमान शिव आदि अन्य देवी-देवताओंको वार-तहेवारोंपर पारिवारिक प्रसंगोमें अथवा रोग आदिमें भोग फूल दूध जल तेल वगैरह चढ़ाते होते हैं.

इस प्रकार भयसे जो अन्याश्रय करते हैं उन्हे समझना चाहिये कि जैसे भूतकालमें एक राजाके आधीन हो कर उसके राज्यमें रहनेवाले अनुचर व्यक्तिको अन्य किसी देशका राजा दंडित नहीं कर पाता था. वैसे ही देवोंके भी देव भगवान् श्रीकृष्णके शरणमें गये हुवे व्यक्तिका अन्य देवी-देवता क्या बिगाड़ कर पायेंगे! ओर फिर देव तो खुद प्रभुके अंश हैं. अतः, एक अंश अपने अंशीके शरणागत अन्य अंशको अपने स्वामीकी सेवा करते देखकर जैसे प्रसन्न होता है वैसे ही कोई भगवद्भक्त भी जब अन्य सभी देवी-देवताओंकी पूजा-भक्ति छोड़ कर एक मात्र श्रीकृष्णकी भक्ति करने लगता है तो उसे देखकर सभी देवी-देवता अत्यंत प्रसन्न ही होते हैं. इसलिये भगवान्‌के शरणमें गये हुवेको किसी से भी डरे बिना, अन्याश्रयका त्याग करके एकमात्र श्रीकृष्णका ही शरण रखना चाहिये. और यदि कुलपरंपरासे अथवा जिस किसी भी कारणसे घरमें अन्य किसी देवी-देवताकी मूर्ति-चित्र वगैरह पूजामें या वैसे ही विराजते हों तो उन्हें आदरपूर्वक उन-उन

देवी-देवताओंको माननेवालोंको अथवा उन-उन देवी-देवताओंके मंदिरमें पधरा देने चाहिये.

(३) अविश्वास : जिसका आश्रय किया हो उस पर यदि विश्वास दृढ न हो पाया हो तो भी मनुष्य अन्यका आश्रय करने लगता है. सामान्य व्यवहारमें भी हम देख सकते हैं कि किन्हीं दो व्यक्तिओंके बीच कितना भी गाढ़ संबंध क्यों न हो परंतु यदि उसमें जरा भी अविश्वास पनप जाता है तो अच्छे अच्छे संबंध भी टूट जाते हैं. प्रभु साथके संबंधमें भी ऐसा ही होता है. प्रभुपर अविश्वास रखनेवाले भक्तका प्रभुके साथ संबंध उसी तरह छूट जाता है, जिस तरहसे हनुमानजीपर स्वयं छोड़े ब्रह्मास्त्रके साथ मेघनादका सामर्थ्य निःशेष हो गया था.

रावणद्वारा सीताजीका अपहरण हुवा है यह समाचार जान कर रामचन्द्रजीने हनुमानजीको सीताजीकी खोजमें भेजा. लंकामें आये हनुमानजीको पकड़नेकेलिये राक्षसोंमें भगदौड़ शुरु हुई. हनुमानजी, परंतु, किसी भी तरह पकड़में नहीं आये. अंतमें रावणके पुत्र मेघनादने हनुमानजीको मंत्रशक्तिसे बांधनेकेलिये ब्रह्मास्त्र छोड़ा. ब्रह्मास्त्रका आदर करनेकेलिये हनुमानजी तो बंध गये परंतु हनुमानजीके बल और पराक्रम को देख चुके मेघनादको, सूतके झीने धागों जैसे ब्रह्मास्त्रके बंधनको कहीं हनुमानजी तोड़ न डालें ऐसा अविश्वास हुवा. सो मेघनादने हनुमानजीको ब्रह्मास्त्रके अलावा लोहेकी भी सांकलमें बांध देनेका आदेश दिया. ब्रह्मास्त्रपर पनपे अविश्वासको हनुमानजी ताड़ गये सो मेघनादके ब्रह्मास्त्र समेत लोहेकी सांकल को भी तोड़ कर हनुमानजी मुक्त हो गये. मुक्त होकर हनुमानजीने पूरी लंकाको जलाकर राख कर दिया.

इससे हम समझ सकते हैं कि अविश्वासका परिणाम कितना भयानक होता है. अतएव 'विवेकधैर्याश्रय' ग्रन्थमें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं :—

अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः ।

अर्थ : अविश्वास सब तरहसे बाधक (अनिष्टकारक) है. इसलिये प्रभुके ऊपर कभी भी अविश्वास नहीं करना चाहिये.

(४) प्रभुके स्वरूपका अज्ञान : प्रभुके स्वरूपका ज्ञान न होनेसे अथवा दुःखके समय प्रभुके माहात्म्यको भूल जानेके कारण भय अथवा अविश्वास होता है और मनुष्य अन्याश्रय कर बैठता है. इसलिये प्रभुस्वरूपके अज्ञानके कारण होते अन्याश्रयसे बचनेकेलिये भागवत् गीता वैष्णव-वार्ता आदिमें निरूपित प्रभुके स्वरूप गुण तथा लीला का ज्ञान वैष्णव तथा गुरु द्वारा प्राप्त करना चाहिये.

(५) दुःसंग : श्रीगुसांईजीके सेवक एक पति-पत्नी थे. उनके पड़ोसमें एक अन्यमार्गीय स्त्री रहती थी. वह पड़ोसी स्त्री इस वैष्णव स्त्रीको अपने घर बुलाती थी परंतु वैष्णव स्त्री जाती नहीं थी. एक दिन सुबह वह स्त्री वैष्णव-स्त्रीको जबरदस्ती अपने घर ले गयी. पड़ोसी स्त्री बहुत धनवान थी, उसकी धनसंपत्ति देखकर वैष्णव-स्त्रीके मनमें लालच आ गया. यह देख पड़ोसी स्त्रीने वैष्णव स्त्रीके मनमें ऐसा भूसा भर दिया कि वह श्रीठाकुरजीकी सेवा करती है परंतु कुलदेवीकी पूजा नहीं करती इसलिये गरीब है. साथ-साथ एक देवीकी मूर्ति भी पूजाके लिये उसको दे दी.

दोपहरको वैष्णव घर आया तब उसकी पत्नीने कुलदेवीकी पूजाकेलिये सामान लेने भेजा. वैष्णव स्त्रीकी बुद्धि अन्यमार्गी पड़ोसी स्त्रीके संगसे बिगड़ी; और पत्नीके संगसे वैष्णव पतिकी बुद्धि बिगड़ी. वैष्णव अन्याश्रय करे यह कदापि उचित नहीं होता. इसलिये प्रभुने ऐसी लीला करी कि जिससे वैष्णवकी बुद्धि फिरसे ठिकानेपर आ गयी. देवीकी पूजाका सामान लेने गये वैष्णवने पूजाका सामान लीया परंतु पैसेकी अपनी थैली लेनेके स्थान पर दुकानदारके रुपयेकी थैली लेकर चलता बना. दुकानदारको पता चलनेपर उसने राजाके पास फरियाद करके वैष्णवको पकड़वा दिया और सज़ाके तौरपर गधेपर चढ़ा कर

सारे गांवमें घुमाया. वैष्णवको अन्याश्रय करनेकी खुदकी भूल समझमें आ गयी.

रुग्णके संगसे अच्छा-भला आदमी भी बीमार पड़ सकता है अतः डोक्टर हमें रोगीसे दूर रहनेकी सलाह देता है. उसी प्रकार जिसके संगसे वैष्णवको प्रभुसेवा-स्मरण करनेकी प्रेरणा न मिलती हो, भगवद्भावमें वृद्धि न होती हो, मार्गमें आदर और निष्ठा न बढते हों, बहिर्मुखता आती हो ऐसे व्यक्तिके संगको दुःसंग समझ कर छोड़ देना चाहिये. ओर फिर जिन वैष्णवोंको मार्गके सिद्धान्तोंका संपूर्ण ज्ञान भी नहीं है उनको तो बहोत सोच-विचार कर संग करना चाहिये. उक्त वार्तासे यही सिद्धान्त समझमें आता है.

(६) सिद्धान्तका अज्ञान : सुव्यवस्थित किसी भी मार्गमें उसपर चलनेवालोंकी सुविधाकेलिये संकेत, सूचनापट्ट, संभावित खतरेकी चेतावनी, चांकी-नाका वगैरहकी व्यवस्था रखी जाती है. मार्ग चाहे कितना ही सुव्यवस्थित क्यों न हो पर कोई चलनेका ऐसा आलसी हो कि जिसे चलनेकी इच्छा ही न होती हो अथवा तो कोई ऐसा प्रमादी हो कि जिसे सूचनाओंके अनुसार चलना ही न सुहाता हो ऐसा कोई यदि मार्गमें आ धमके तो सुव्यस्थित मार्गपर आरूढ होनेपर भी वो कैसे कहीं पहुंच पायेगा! इसी तरह जिसे चलना तो आता हो और चलनेमें आलस्य भी न हो परंतु यदि उसे मार्गके गंतव्य (मार्ग जहां पहुंचाता है उस) का ही भान न हो अथवा मार्गमें आते संकेत सूचन अथवा चेतावनिओंको पढ़ना अथवा समझना ही न आता हो तो ऐसा अज्ञानी व्यक्ति भी कैसे लक्ष्य तक पहुंच पायेगा! इसलिये एक खास बात समझ लेनी आवश्यक है कि जैसे किसी भी मार्ग-रास्तेका ज्ञान, उसपर चलनेवालोंकेलिये जरूरी होता है वैसे ही धर्म-संप्रदाय अथवा धर्ममार्ग में आनेवालोंकेलिये भी उसके सिद्धान्तोंका ज्ञान होना अत्यंत जरुरी होता है.

अन्याश्रय किसे कहते हैं? भगवदाश्रय क्या है? इत्यादि

विषयोंका पर्याप्त ज्ञान न होनेके कारण भी लोग अन्याश्रय करने लग जाते हैं. इसलिये ऐसे अज्ञानी लोगोंको, सबसे पहले, मार्गके सिद्धान्त गुरुद्वारा जानकर अपने अज्ञानको दूर करना चाहिये.

इस तरह हमने अन्याश्रय तथा अन्याश्रयत्यागके स्वरूपको समझा. अन्याश्रयका त्याग पुष्टिमार्गमें प्रवेश पानेकेलिये प्राथमिक शर्त है. इसलिये अन्याश्रयरहित अनन्य भक्तिकी प्रशंसा करते हुवे भगवान् गीतामें आज्ञा करते हैं :—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

अर्थ : अव्यभिचारी अर्थात् अन्याश्रयरहित भक्तियोगसे जो मेरी सेवा करते हैं वे प्राकृत गुणोंके बंधनसे मुक्त होकर परम फलको प्राप्त करते हैं.

विशेष अध्ययनके लिये ग्रंथ :
षोडशग्रन्थान्तर्गत विवेकधैर्याश्रय तथा श्रीकृष्णाश्रय
८४-२५२ वैष्णववार्ता
श्रीभागवत्
भगवद्गीता

१३. शरणमार्ग

शरणमार्ग :

इहलोक और परलोक में श्रीकृष्णके सिवा मेरा सच्चा रक्षक और पालक दूसरा कोई नहीं है, ऐसा दृढ़ दैन्यभाव रखकर अन्याश्रयका और अन्य साधनोंमें निष्ठाका त्याग करके, अनुकूल या प्रतिकूल प्रत्येक परिस्थितिमें समान भाव रखते हुवे प्रभुके स्वरूप गुण और लीलाओं का श्रवण-स्मरण-कीर्तन करते रहना इसीको 'शरणमार्ग' कहते हैं.

शरणमार्गका मूल :

पांडवों और कौरवों के बीच युद्ध होना निश्चित हुवा, तब अर्जुन पांडवोंकी ओरसे और दुर्योधन कौरवोंकी ओरसे भगवान्‌के पास सहायता लेने गये. भगवद्भक्त अर्जुनने तो साक्षात् भगवान्‌को ही अपने पक्षमें मांग लिया; जबकि दुर्योधन तो भगवान्‌की सेनाको लेकर प्रसन्न हो गया. युद्धकी घड़ी आयी तब भी अर्जुनने अपने मार्गदर्शकके रूपमें भगवान्‌को ही रथका चालक (सारथि) बनाया.

युद्धकी शुरुआत करनेकेलिये दोनों पक्ष जब रणभेरी फूंकने लगे तब भगवान्‌ने अर्जुनके रथको युद्धके मैदानमें दोनों सेनाओंके बीच ला कर खड़ा कर दिया. सामनेके पक्षमें नज़र डालनेपर अर्जुनको उसके काका, भाई, भतीजा, मामा इत्यादि सगे-संबंधी और गुरुजन वहां लड़नेकेलिये खड़े दिखलायी दिये. अर्जुन बहादुर और शस्त्रविद्यामें निपुण था, सकल शास्त्रोंका जानकार था, फिरभी अपने स्वजनोंके साथ युद्ध करना पड़ेगा यह सोचकर उस समय उसके मनमें खलबली मच गयी. उसके पूरे शरीरमें झन्नाहट होने लगी. ऐसी विकट परिस्थितिमें उसे सच्चा मार्ग दिखा सके, ऐसा यदि कोई था तो वे थे एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण. अर्जुनने भगवान्‌के शरणमें जाकर बिनती की :—

हे श्रीकृष्ण! ऐसी विकट परिस्थितिमें मेरा मन स्थिर नहीं हो पाता है. धर्म-अधर्मका विवेक भी

मैं कर नहीं पाता हुं. मेरी समस्याका समाधान कर सके ऐसा आपके अलावा और कोई मुझे दिखलायी भी नहीं पड़ता. इसलिये मैं आपसे पूछरहा हुं. मेरेलिये जो कल्याणकारी हो वह मुझे कहो. मैं आपकी शरणमें हुं. मुझे उपदेश दो.

अर्जुनके इन वचनोंका विचार करनेपर अर्जुनमें शरणागतिके योग्य नि:साधनता, अनन्यता, विश्वास, अन्य उपाय करनेमें निरुत्साह और पूर्ण दीनता रूपी गुण आ गये थे यह स्पष्ट हो जाता है. अर्जुनने भगवान्‌की शरणागति स्वीकार ली तब उसकी प्रत्येक शंकाओंका भगवान्‌ने समाधान किया और अंतमें जीवमात्रकेलिये कल्याणकारी ऐसे शरणमार्गका महान् उपदेश दिया :—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥

अर्थ: (मेरे शरण आनेमें प्रतिबंध करनेवाले) सभी धर्मोंका त्याग करके मेरे अकेलेकी शरणमें तू आजा! मैं तुम्हे हर पापोंसे (अर्थात् मेरे शरणमें आते समय जितने भी विघ्न आवेंगे उनसे में तुम्हे) मुक्त कराउंगा; तू चिंता मत कर.

श्रीमहाप्रभुजीके द्वारा प्रवर्तित शरणमार्गका आधार भगवान्‌का यही उपदेश हैं.

छोटा बालक जैसे अकेला पड़ जानेपर घबरा कर दौड़ता हुवा अपनी माताके पास चला जाता है और ऐसे भयभीत बालकको माता अपनी गोदमें ले लेती है, वैसे ही हम भी यदि प्रभुपर अटूट विश्वास नि:साधनता दीनता और अनन्यता के साथ प्रभुकी शरणागति स्वीकार लें तो प्रभु हमें अवश्य स्वीकार लेते हैं.

शरणागतिके छह अंग :

'शरणागति'का अर्थ है अपने आपको सब रीतसे प्रभुको सोंप देना. और 'शरणमार्ग'का अर्थ है अपने-आपको पूर्णतया प्रभुको सोंप देनेका मार्ग. प्रभुके प्रति पूर्णरूपसे शरणागत होनेकेलिये

शरणागतिके छह अंगोंका निरूपण श्रीमहाप्रभुजीने 'प्रंथश्लोकी' नामक ग्रंथमें किया है :—

१.अनुकूलस्य संकल्पः २.प्रतिकूलविसर्जनम्।
३.करिष्यतीति विश्वासः ४.भर्तृत्वे वरणं तथा॥
५-६.आत्मनैवेद्यकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।

(१) अनुकूलस्य संकल्पः : प्रभु और प्रभुसेवा इत्यादि प्रभुसंबंधी बातोंके अनुकूल बननेका निश्चय.

भक्तका जो कुछ भी होता है वह सब प्रभु ही अपनी इच्छासे करते हैं, इसलिये सुख-दुःख निंदा-प्रशंसा इत्यादि प्रत्येक परिस्थितिओंको प्रभुकी लीला समझ कर तटस्थभावसे रहना और प्रसन्नतापूर्वक प्रभुके सेवा-स्मरण-कीर्तनादि करने.

(२) प्रतिकूलविसर्जनम् : प्रभु और प्रभुसंबंधी विषयोंसे प्रतिकूल बातोंका त्याग.

अन्याश्रय, अवैष्णवोंका संग, खराब विचार, बुरा या अनावश्यक बोलना, अधर्मका आचरण, शास्त्रनिषिद्ध या निंदित आजीविका (धंधा-रोजगार), लालच, क्रोध, लोभ, अज्ञान, अभिमान, ईर्ष्या, शास्त्रनिषिद्ध या निंदित आहार इत्यादि एक या दूसरे रीतिसे भगवद्धर्मके विरोधी हैं. ऐसी सभी बातोंका भक्तिमार्गीको त्याग करना चाहिये.

(३) करिष्यति इति विश्वासः : शरणमें आये हुवेके सर्व कार्य भगवान् करेंगे ऐसा दृढ़ विश्वास.

भगवान् गीतामें अर्जुनको वचन देते हैं :—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

अर्थ : जो अनन्य लोग मेरा चिंतन करते हुवे तन-मन-धनसे मेरी सेवा करते हैं उनके मेरे प्रतिके भावोंका मैं पोषण करता हुं और उनके भावोंमें रही हुई कमीको मैं दूर करता हुं.

इसलिये प्रभुके शरणमें गये हुवे जीवको दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि प्रभु अपने शरणमें आये हुवे जीवके सर्व कार्य

करते ही हैं.

(४) भर्तृत्वे वरणं : भगवान्‌को अपने रक्षक तथा पालक मानना.

पिताके पास जाकर बालक जैसे सब भयोंसे मुक्त हो जाता है, आगे-पीछेकी कोई भी चिंता उसे रह नहीं जाती है. जगत्पिता परमात्मा भी शरणमें आये हुवे जीवकेलिये परमपितातुल्य ही हैं. इसलिये जीवको भी प्रभुको अपना रक्षक और पालक समझकर चिंता और भयसे मुक्त हो जाना चाहिये.

(५) आत्मनैवेद्य : आत्मनिवेदन.

खुदको तथा खुदसे संबंधित सभी वस्तुओंको भी प्रभुको निवेदित कर देना सच्चा आत्मनिवेदन कहलाता है. अर्थात् खुदमें और खुदकी सब वस्तुओंमें रहे हुवे अहंभाव (मैं) और ममभाव (मेरा) का त्याग करके मैं ओर मेरा सब कुछ प्रभुसेवा केलिये है ऐसा भाव स्थापित कारना चाहिये. यही समर्पणका मुख्य भाव है. प्रभुको अपना रक्षक माननेके बाद खुदपर या अपनी किसी भी वस्तुपर मोहमयी ममता रखनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती. इसलिये सर्वस्वका निवेदन कर्तव्य बनता है.

(६) कार्पण्य : दीनता. (देखिये पृष्ठ).

शरणागतिके इन छहों अंगोंको जीवनमें उतारा जाये तो प्रभुमें पूर्ण शरणागति सिद्ध हो जाती है.

शरणमार्ग, श्रीमहाप्रभुजीके मतमें, एक स्वतंत्र मार्ग भी है और पुष्टिभक्तिमार्गका अंगभूत सहायक मार्ग भी. (१) जो व्यक्ति प्रभुके सेवा और स्मरण दोनों निभा पाता है; अथवा जो प्रभुसेवा तो नहीं कर पाता परंतु भगवदीयोंकी संगतिद्वारा प्रभुके स्वरूप-गुण-लीलाके श्रवण-कीर्तन-स्मरणको निभा पाता है, ऐसे दोनों प्रकारके भक्तिमार्गिओंकेलिये शरणमार्ग प्रभुभक्तिको अधिक दृढ बनानेवाला होता है. और (२) जो व्यक्ति न तो प्रभुके सेवा या कीर्तन ही भलीभांति निभा पाता हो और न श्रवण-कीर्तन-स्मरण

या सत्संग ही, ऐसा निःसाधन व्यक्ति यदि केवल प्रभुका अनन्य भावसे शरण स्वीकार लेता है तो ऐसे दीन भक्तको श्रीमहाप्रभुजी आश्वासन देते हुवे आज्ञा करते हैं :—

हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः।

अर्थ : भक्तोंके दुःखोंको हरनेवाले श्रीकृष्ण सभी प्रकारसे रक्षा करेंगे. इसमें किसी भी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिये.

इस तरह समझा जा सकता है कि निःसाधन जीवकेलिये शरणमार्ग एक स्वतंत्र मार्ग भी है.

शरणमार्गमें प्रवेश क्यों :

किसी भी पुष्टिमार्गीका पहला और अंतिम लक्ष्य प्रभुके सेवा-स्मरण करते हुवे अपना समग्र जीवन विताना होता है. इस लक्ष्यको पानेकी तैयारी करनेकेलिये शरणमार्गमें प्रविष्ट होना चाहिये. अपने जीवनमें यदि कोई बड़ा प्रसंग आनेवाला हो तो हम उसकी तैयारी बहोत समय पहलेसे करने लग जाते हैं. इन तैयारियोंका हेतु आनेवाले प्रसंगमें कोई विघ्न न आ पड़े अथवा उसे मनानेमें किसी प्रकारकी कमी न रह जावे यही होता है. इसी तरह एक पुष्टिमार्गीके जीवनमें सबसे बड़ा और सुखद प्रसंग अपने घरमें प्रभुको पधराकर अपने तन-मन-धनसे प्रभुकी सेवा करनेका होता है. ऐसे महान् उत्सवरूप प्रसंगके आनेसे पहले उसे मनानेकी तैयारी करनेकेलिये श्रीमहाप्रभुजीने पुष्टिमार्गमें शरणमार्गका संयोजन किया है. इसीलिये शरणमार्गको सेवा-भक्तिमार्गका साधन भी माना गया है. श्रीकृष्णके अष्टाक्षर नाममंत्रकी दीक्षा योग्य गुरुके पाससे लेकर शरणमार्गमें प्रवेश प्राप्त होता है.

शरणमार्गीके कर्तव्य :

विद्या प्राप्त करनेकेलिये विद्यालयमें प्रविष्ट होनेवाले विद्यार्थीको वर्गमें बैठके पढ़नेके अलावा और भी बहुतसे कर्तव्योंका पालन करना पड़ता है; जैसे कि अनुशासन रखना, स्वच्छता रखनी, विवेकपूर्ण व्यवहार करना, शिक्षकोंका आदर-सन्मान करना,

विपरिधान (युनिफॉर्म) पहनना, नियमित रहना, विद्यालयके गौरवको निभानेकी सावधानि इत्यादि. ये सभी बातें किसी न किसी तरहसे उसे विद्या प्राप्तिमें उपकारक होती ही हैं. वैसे ही प्रभुसेवा करनेके लक्ष्यसे शरणमार्गमें प्रविष्ट होनेवाले शरणागत जीवके दूसरे भी बहोत सारे कर्तव्य होते हैं. जैसे कि १. आचार्यस्वरूपज्ञान २. सिद्धान्तज्ञान ३. श्रवण-कीर्तन-स्मरण ४. वैष्णवचिह्न. इन्हें हमें और अच्छी तरहसे समझना होगा.

१. आचार्यस्वरूपज्ञान : अनजान प्रदेशमें यात्रा करनेकेलिये किसीको मार्गदर्शक बनानेसे पहले (१)उसकी मार्गदर्शन कर पानेकी क्षमताको जान लेना और उसके बाद (२) उसपर पूर्ण विश्वास रख कर उसके निर्देशोंका अनुसरण करना, ये दोनों बातें आवश्यक होती हैं. इसके विना गन्तव्य या लक्ष्य तक पहुंचना शक्य नहीं. क्योंकि यह संभव है कि मार्गपर थोड़ासा चलनेके बाद हमें पता चले हो कि आगे बहोत मुसीबतें हैं, या अपनी अशक्तिके कारण लक्ष्य तक पहोंचनेमें बहोत देर लग जावे; अथवा मार्ग अपनी कल्पनासे बिलकुल भिन्न ही निकले. ऐसी स्थितियोंमें अपने मार्गदर्शकको यदि हम भलिभांती जानते न हों तो संभव है कि उसपर अविश्वास हो जावे; और जिस मार्गपर वह हमें ले जा रहा हो वह सच्चा ही हो फिर भी उससे विमुख हो कर हम लौट जाना चाहें. कभी ऐसा भी हो सकता है कि सच्चे मार्गको छोड़ कर हम किसी दूसरे ही मार्गपर भटकने लग जायें. ऐसी स्थितिमें हम अपने लक्ष्यको कैसे-कहांसे खोज पायेंगे ?

शास्त्रमें गुप्त रूपमें निरूपित इस मार्गको खोज कर सभी पुष्टिजीव निःशंक चल पायें ऐसा सुगम मार्ग बतानेवाले आचार्यचरण श्रीमहाप्रभुजी हमारे मार्गदर्शक अर्थात् सच्चे गुरु हैं. और उनको अपना मार्गदर्शक मान कर उनके अनुगामि अर्थात् पीछे चलनेवाले हम सब पुष्टिभक्तिमार्गके यात्रि हैं. श्रीमहाप्रभुजीके अनुगामी होनेका अर्थ है : श्रीमहाप्रभुजीने निज ग्रंथोमें जो कर्तव्योपदेश दिये हों

उनका यथाशक्ति आचरण करना और जिन बातोंकी श्रीमहाप्रभुजीने निंदा या निषेध किया हो उनसे दूर रहना. इस अर्थमें श्रीमहाप्रभुजीके मार्गके अनुगामी-यात्री होना तब ही शक्य होगा कि जब अपने हृदयमें श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूपका भलीभांति ज्ञान हो और हमारे गुरु श्रीमहाप्रभुजी ही हैं ऐसा अटूट विश्वास हो. अगर इन दोनोंमें से कोई भी एक बात हमारे भीतर नहीं होगी तो संभव है कि हम अपनी निर्बलता या परिस्थिति के वश श्रीमहाप्रभुजीद्वारा प्रवर्तित मार्गपर चल न पावें. थोड़े से आगे बढ़े कि तुरत ही यह मार्ग हमें मुसीबतोंसे भरा लगने लगे. अर्थात् मार्गके सिद्धान्त और उनका आचरण या अनुकरण कठिन या अव्यावहारिक प्रतीत होने लगे. प्रभुकी सेवा-भक्ति रूपी फलकी प्राप्तिमें केवल विलंबके विचारसे हम इतने उत्तम और सुगम मार्गको छोड़ने की गलती कर बैठें. हमें अपने मार्गदर्शक गुरु श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूपका ज्ञान और उनपर विश्वास हो तो, दूसरे लोगोंको भले ही यह मार्ग मुश्किल लगता हो, या मार्गके सिद्धान्त अव्यावहारिक लगते हों, हमें पुष्टिभक्तिमार्ग कठिन नहीं लगेगा. मार्गका अनुसरण करनेकेलिये यदि अपने खान-पान रहन-सहन या धंधा-रोज़गार जैसी बातोंमें भी कोई छोटे-मोटे परिवर्तन करने पड़ते हों तो वे कष्टकर नहीं लगेंगे. मार्गके अनुसरण करनेवालेके सामने कोई विसंप्रदायी व्यक्ति पुष्टिभक्तिमार्गकी आलोचना भी करता हो तो उससे मन विचलित नहीं होगा. श्रीआचार्यचरणपर विश्वास निष्ठाके बलपर लौकिक-वैदिक कष्ट भी सहजतासे झीले जा सकेंगे. प्रभुकी इच्छासे यदि फलप्राप्तिमें विलंब प्रतीत होता होगा तो उससे भी धीरज या मार्गपर विश्वास नहीं टूटेगा. यहां, परंतु, यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि यह सब कुछ श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूपके ज्ञान और उनके उपदेशोंपर विश्वास से ही सिद्ध हो पायेगा.

श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूपज्ञानसे आपके शिष्य श्रीसूरदासजीने स्वयंका गुरुपद छोड़ दिया था. श्रीदामोदरदासजी, धनवान होनेके बावजूद, भरे बजारमेंसे श्रीठाकुरजीकेलिये जल भरने जाया करते थे. उनको लोकलाज नहीं लगती थी. श्रीनारायणदासने अपने

गुरुभाईकी मदद करनेके खातिर पांचसो कोड़े खानेकी तैयारी दीखलायी, दैहिक कष्टकी तनिक भी परवाह नहीं की. श्रीपद्मनाभदासजीने तो श्रीमहाप्रभुजीकी एक आज्ञामात्रसे श्रीभागवतका आजीविकार्थ उपयोग करना बंद कर दिया था. श्रीकुंभनदासजीको राजा मानसिंह जो विपुल संपत्ति देना चाहता था उसके बारेमें किसी भी तरहकी ललक नहीं दिखलायी. श्रीसंतदासजीने श्रीठाकुरजीकी द्रव्य-संपत्तिकी ओर दृष्टि तक नहीं उठायी. ये सारे सामर्थ्य श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूपज्ञान और आपके उपदेशोंपर अटूट विश्वासका परिणाम हैं.

अतः शरणमार्गमें आनेवालेका यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वो स्वयंके दीक्षागुरुद्वारा आचार्यचरण श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करे. श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरणद्वारा विरचित सर्वोत्तमस्तोत्र, श्रीवल्लभाष्टक, सप्तश्लोकी इत्यादि स्तोत्रग्रंथ, ८४ वैष्णवोंकी वार्ता तथा कीर्तन-साहित्य में श्रीमहाप्रभुजीके दिव्य स्वरूप तथा चरित्र का वर्णन है. इन सबका श्रद्धापूर्वक अभ्यास हरेक वैष्णवको करना चाहिये.

२. सिद्धान्तज्ञान : पुष्टिभक्तिमार्गके सिद्धान्तोंका ज्ञान प्राप्त करना यह शरणमार्गीका दूसरा प्रमुख कर्तव्य है. आचार्यचरणके स्वरूप एवं चरित्र का ज्ञान और आपपर विश्वास तो हो परंतु यदि मार्गके सिद्धान्तोंका ज्ञान न हो तो मार्गका अनुसरण शक्य नहीं है. राजमार्ग पर वाहन चलानेकेलिये जैसे उसपर लगायी गयी हर सूचनाओंका पालन करना अनिवार्य होता है. उसी तरह धर्ममार्गका अनुसरण करनेकेलिये भी मार्गप्रवर्तक आचार्यचरणके वचनोंका अर्थात् सिद्धान्तोपदेशोंका अक्षरशः पालन करना आवश्यक होता है, इसके बिना धर्ममार्गपर चलना संभव नहीं है.

सिद्धान्तज्ञान किस प्रकार?

सिद्धान्तोंका पालन सिद्धान्तको समझे बिना कैसे संभव है? इसलिये स्वयंके दीक्षागुरुसे मार्गके तत्त्व, सिद्धान्त, व्यवहार और फल पक्षोंका नियमितरूपसे अध्ययन करना चाहिये. षोड़शग्रंथ

तथा तत्त्वार्थदीपनिबंध यह दो श्रीमहाप्रभुजी विरचित ऐसे ग्रंथ हैं कि जिसमें समग्र पुष्टिभक्तिमार्गका सार आ जाता है. अतएव पुष्टिभक्तिमार्गका अनुसरण करनेकी इच्छा रखनेवालेको कमसेकम इन दो ग्रंथोंका अध्ययन आग्रह पूर्वक अपने दीक्षागुरुके पाससे करना अनिवार्य है. जो लोग केवल वैष्णववार्ताके आधारपर सिद्धान्त निर्णय करते हैं उनको भी उक्त ग्रन्थोंका सहूरसे गहन अभ्यास करने के बाद ही सिद्धान्तनिर्णय करना चाहिये. अन्यथा केवल वार्ताके आधरपर किये गये निर्णयोंमें भयंकर भूल होनेकी पूरी संभावना रहती है.

आजके कालमें, मार्गके सिद्धांतज्ञानके अभावके कारण, असंख्य पुष्टिमार्गीय वैष्णव मार्गसे विपरीत आचरण करके खुदका अनिष्ट कर रहे हैं. श्रीमहाप्रभुजीके नाम पर क्षुद्र स्वार्थ साधनेकी बददानत रखनेवाले मार्गमें स्थित और बहारके भी बहोतसे लोग पुष्टिभक्तिमार्गियोंकी इस अज्ञानताका लाभ लेकर उनको ग़लत राहपर खींच कर ले जा रहे हैं. जैसे आधुनिक राजनीतिज्ञ सामान्य जनताके अज्ञानका लाभ लेकर जाति-धर्म-अल्पमत-प्रांत इत्यादि मुद्दे खड़े करके जनताकी एकताको खंडित करते रहते हैं और उसके द्वारा अपना क्षुद्र स्वार्थ साध लेते हैं वैसे ही इस मार्गमें भी कितने ही लोग स्वार्थके खातिर अनुयायिवर्गको जानबूझ कर मार्गके मूलभूत सिद्धान्तोंसे अनजान रखकर पाखंडपूर्ण निर्मूल परंपरा या रूढिओंको सिद्धान्तके रूपमें स्थापित करनेकी कुचेष्टा कर रहे हैं. हरएक संप्रदायमें कभी-कभाक ऐसा हो ही जाता है. इसका उपाय, परंतु, एक ही है और वह है: श्रीमहाप्रभुजीके ग्रंथोंका अभ्यास.

श्रीमहाप्रभुजी स्पष्ट शब्दोंमें आज्ञा करते हैं:—

शास्त्रमवगात्य मनोवाग्देहैः कृष्णः सेव्यः

भावार्थ: (पुष्टिभक्तिमार्गके सिद्धान्तोंकी जिसमें सीख दी गयी है, ऐसे षोड़शग्रंथ, निबंध, श्रीभागवत् इत्यादि) शास्त्रको भलीभांति समझ कर मन वाणी तथा देह से श्रीकृष्णका सेवा-स्मरण करना चाहिये.

३. श्रवण-कीर्तन-स्मरण: सिद्धान्तोंके ज्ञानसे मार्ग कैसा है या कैसा नहीं है, मार्गपर कैसे चलना या कैसे नहीं चलना, मार्ग कहां पहुंचाता है या कहां नहीं पहुंचाता, इत्यादि बातोंकी समझ आती है. केवल सिद्धान्तज्ञानसे, परंतु, हृदयमें प्रभुके प्रति भक्तिभाव नहीं बढ़ पाता. भक्तिभावकी वृद्धि तो प्रभुके स्वरूप-लीला-गुण-नामोंके श्रवण-कीर्तन-स्मरणसे होती है. क्रिकेट संगीत या चित्रकला में रुचि रखनेवाले लोग समानरुचि रखनेवालोंके साथ अपने प्रिय विषयकी चर्चा करते रहते हैं. उन विषयोंकी पुस्तक पढ़ते रहते हैं. ऐसा करनेसे उनको अपने प्रिय विषयको भलीभांति समझने और समझ कर उसका आनन्द लेनेकी अधिकसे अधिक रुचि-प्रेरणा मिलती है. इसी तरह प्रभुके भक्तोंको भी अन्य भक्तों तथा भक्तिमार्गीय ग्रन्थों का संग करके अपने प्रिय प्रभुके श्रवण कीर्तन स्मरण करते रहना चाहिये. ऐसा करनेसे दुःसंग दुर्विचार या दुष्ट-अन्नभोजन इत्यादि कारणोंसे यदि भगवद्भावमें कमी भी आयी होगी तो वह बढ़ोतरीमें बदल जायेगी. उत्तम भक्तोंके संगसे प्रभुसेवामें रुचि उत्पन्न होती है तथा स्वकर्तव्यपालनकी प्रेरणा भी मिलती है.

४. वैष्णवचिह्न: शरणमार्गीकेलिये यह आवश्यक है कि वह पुष्टिभक्तिमार्गके सिद्धान्तोंके अनुसार माहात्म्यज्ञान, आश्रय, दीनता, निःसाधनता और श्रद्धाभाव इत्यादि वैष्णवताके आंतरचिह्नोंकी लगामसे अपने मन-बुद्धिको नियंत्रणमें रखे. जबकि तिलक-कंठी जैसे वैष्णवताके बाह्यचिह्नोंकी लगामसे अपने शरीर और वाणीसे होते बाह्य व्यवहारोंको नियंत्रणमें रखे. ये चिह्न हमें सतत अपने कर्तव्य और स्वरूप का बोध तो कराते ही हैं, साथ-साथ धर्मको ठेस पहोंचानेवाले कोई कार्य हम न कर बैठें, इसकेलिये भी हमें सतत जागृत रखते हैं. शरणमार्गी इन कर्तव्योंका पालन करते हुवे यह बात कभी भी न भूले कि प्रभुसेवा करने योग्य बननेकेलिये ही मैं यह सब कर रहा हूं.

प्रभुके शरणमें जानेवाले जीवको मिलते फलका निरूपण करते हुवे श्रीभागवतमें कहा गया है:—

संतोष मिलना, पोषण मिलना और भूख दूर होना ऐसे तीनों लाभ जैसे स्वादिष्ट, पोषक और पर्याप्त अन्नग्रहण करनेवालेको केवल भोजन करनेसे ही मिल जाते हैं, वैसे ही प्रभुके शरणमें जानेवालेको भक्ति, प्रभुका अनुभव तथा प्रभुके सिवा सभी बाबतोंमें वैराग्य—ऐसे तीन फल एकसाथ ही मिल जाते हैं.

विशेष अध्ययनके लिये ग्रंथ:

न्यासादेश.

भगवद्गीता.

१४. पुष्टिभक्ति

पुष्टिभक्ति:

लौकिक पारलौकिक या मोक्षकी भी कामना रखे बिना माहात्म्यज्ञानपूर्वक प्रभुमें सुदृढ़ और सर्वातिशायी स्नेहसे की जाती सेवाको 'पुष्टिभक्ति' कहा जाता है.

भक्तिके विभिन्न प्रकार:

कार्य कोई एक ही हो परंतु उसे करनेवाला व्यक्ति, व्यक्तिका स्वभाव, कार्य करनेके भीतर रही भावना (प्रयोजन–हेतु), परिस्थिति, समय आदि बदल जानेपर कार्यके स्वरूपमें भी यत्किंचित परिवर्तन आ ही जाता है. जैसे डॉक्टर यदि बीमार व्यक्तिको स्वस्थ बनानेकेलिये शरीर पर ऑपरेशन करता है तो उसे 'चिकित्सा' कहा जाता है और यदि दुश्मन शरीर पर चक्कु-छुरा चलाता है तो उसे 'हत्या' कही जाती है. उचित स्थान और समय पर, सन्मानपूर्वक तथा प्रत्युपकारकी भावना रखे बिना यदि योग्य व्यक्तिको दान दिया जाता है तो उसे धर्म माना जा सकता है. धर्मविरुद्ध आचरण करनेवाले, नास्तिक, पाखंडी, लोभी, देवद्रव्य खानेवाले या देवलक जैसे अयोग्य-कुपात्र व्यक्तिको यदि दान दिया जाता है तो उसे धर्मविरुद्ध कार्य समझा जाता है. समर्थ व्यक्तिकेलिये शास्त्रीय शुद्धि-अशुद्धि पालनेके उपदेशको सदाचारका उपदेश समझा जाता है. जबकी असमर्थ व्यक्तिकेलिये शास्त्रका यही उपदेश अत्याचारका सामान बन जाता है. किसीके दबावमें आकर अनिच्छापूर्वक अन्य देवी-देवताओंके पूजन-दर्शन-कथाश्रवण आदि करनेपर अन्याश्रय नहीं होता परंतु ऐसा कुछ भी न होनेपर जानबूझकर इच्छापूर्वक अन्य देवी-देवताओंके पूजन-दर्शन-कथाश्रवण करनेपर तो अन्याश्रय होता ही है. घरमें प्रभुसेवा न कर पानेवालेकेलिये असमर्पित वस्तुको उपयोगमें न लानेका उपदेश लागु नहीं होता परंतु घरमें प्रभुसेवा करनेवाले ब्रह्मसंबंधी वैष्णवको श्रीमहाप्रभुजी असमर्पित वस्तुके त्यागकी आज्ञा करते हैं.

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि कोई एक ही कार्य किस प्रकारसे अलग-अलग रूप ले लेता है. भक्तिके विषयमें भी ऐसा ही है. विभिन्न सम्प्रदायोंमें और सामान्य जनतामें भक्तिके जो भिन्न-भिन्न रूप देखे जाते हैं, श्रीभागवतमें उसके तीन कारण बताये गये हैं: जीवोंके स्वभाव गुण और मार्ग के भेदके कारण भक्तिके रूप भिन्न-भिन्न हो जाते हैं.

भक्तिकी विभिन्नताके कारण:

(१) स्वभावभेद: सृष्टिके प्रारंभसे ही भगवान्‌ने पुष्टि मर्यादा और प्रवाह के भेदसे जीव भिन्न-भिन्न स्वभावोंवाले बनाये हैं. इसीलिये ऐसे भिन्न-भिन्न स्वाभावोंवाले जीवोंद्वारा की जाती भक्ति भी भिन्न-भिन्न स्वरूप ले लेती है. उदाहरणतया, पुष्टिस्वाभाववाले जीवोंद्वारा की जाती भक्ति स्नेहपूर्वक सेवाभावको प्रधानता देनेवाली होती है. मर्यादा स्वाभाववाले जीवोंद्वारा की जाती भक्ति शास्त्रके विधि-विधानोंको प्राधानता देनेवाली और मोक्ष प्राप्तिकी साधनाके रूपमें की जाती है. प्रवाही स्वाभाववाले जीवोंद्वारा की जाती भक्ति लौकिक-पारलौकिक क्षुद्र फलोंकों प्राप्त करनेके स्वार्थपूर्ण भावोंसे भरी होती है. इस प्रकार हमने देखा कि स्वभावभेदके कारण किस प्रकार भक्तिके स्वरूपमें परिवर्तन आ जाता है.

(२) गुणभेद: गुणभेदके कारण होते भक्तिके स्वरूपमें परिवर्तनको समझनेसे पूर्व गुणोंका स्वरूप, गुणोके कार्य आदि विषयोंको समझना जरूरी है.

हमारे शरीरमें जीवात्मा चेतन है जबकी हमारा शरीर जड़ है. चेतन जीवात्मा शरीरमें रहती होनेके कारण हमारा शरीर कोई भी कार्य कर सकता है. इस बातको सरलतासे समझना हो तो कहा जा सकता है कि यदि मशीनसे काम लेना हो तो मशीनमें बिजलीका प्रवाह चालु करना पड़ता है. बिजलीके बिना मशीन चल नहीं पाती. यहां मशीन = शरीर और बिजली = जीवात्मा समझ लेना चाहिये.

लोहा पीतल आदि अनेक प्रकारकी धातुओंसे मशीन बनायी

जाती है. यदि मशीन उत्तम प्रकारकी धातुओंसे बनी होगी तो अच्छा काम देगी और यदि निम्न कोटीकी धातुओंसे बनी होगी तो अच्छा काम नहीं दे पायेगी.

इस दृष्टांतके आधारपर समझा जा सकता है कि हमारा शरीर भी अन्य जड़ पदार्थोंके समान प्रकृतिके सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुणों का बना हुवा है. इन गुणोंका अनुपात हर वस्तु या व्यक्ति में समान नहीं होता. कहीं कोई गुण अधिक होता है तो कहीं कोई कम. जब सत्त्वगुणकी अधिकता होती है, तब रजोगुण और तमोगुण दब जाते हैं. इसी प्रकार रजोगुणके बढ़ जानेपर सत्त्वगुण और तमोगुण दब जाते हैं. ऐसे ही तमोगुणके बढ़नेपर सत्त्वगुण और रजोगुण दब जाते हैं. इस प्रकार एक ही व्यक्तिमें भी इन गुणोंकी घट-बढ़ होती रहती है. जिसमें जो गुण सामान्य रूपसे अधिक अनुपातमें रहता हो उसे 'वैसे गुणवाला' कहा जाता है. अर्थात् सत्त्वगुण जिसमें समान्य मात्रासे अधिक रहता हो उसे 'सात्त्विक' कहा जाता है. रजोगुण या तमोगुण जिसमें सामान्यसे अधिक मात्रामें रहता हो उसे यथाक्रम 'राजस' या 'तामस' कहा जाता है.

(३) गुणोंमें परिवर्तन होनेके कारण: व्यक्तिके द्वारा किये गये अच्छे-बुरे कर्म, आहार, संग, वातावरण, जाति, संस्कार, शिक्षण आदि अनेक कारणोंसे गुणोंमें परिवर्तन आ जाते हैं.

गुण तथा उसके कार्य:

हमने देखा कि हमारे चित्त[१] अहंकार[२] मन[३] बुद्धि[४] ज्ञानेन्द्रिय[५] कर्मेन्द्रिय[६] तथा देह भी इन्हीं सत्त्व रज स्तमो गुणोंके बने होते हैं. इसलिये इनकेद्वारा किये जानेवाले हर कार्यपर इन गुणोंका प्रभाव पड़ता ही है.

---

१. चित्त: जीवचेतनाको अनुभव करनेमें सक्षम तथा तद्द्वारा सभी अन्तःकरणों बाह्यकरणों और देह को सचेतन बनानेवाला शान्त निर्विकार आन्तरिक उपकरण.

सत्त्व :

सत्त्वगुणके बढ़नेसे इन्द्रियोंमें स्वस्थता आती है. मनमें आनन्द तथा बुद्धिमें ज्ञानका संचार होता है. फलस्वरूप सात्विक मनुष्य सत्कर्म करनेवाला होता है तथा सत्फलको प्राप्त करता है.

रजस्:

रजोगुणकी वृद्धि होनेपर मनुष्यमें चपलता, अभिलषित वस्तु प्राप्त करनेकेलिये कर्ममें प्रवृत्ति, लोभ, अशांति, अहंकार आदि लक्षण देखे जाते हैं. राजसमनुष्यमें लोभ-लालचका प्रमाण अधिक होनेके कारण उसे कभी भी किसी भी बातसे संतोष होता नहीं है. असंतोषके कारण वह दुःखी ही रहता है

तमस्:

तमोगुणके बढ़नेपर मनुष्यमें अज्ञान, लापरवाही, आलस, नींद आदि लक्षण देखे जाते हैं. अज्ञानके कारण तामसी मनुष्यको धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, अच्छा-बुरा या हित-अहित का भान नहीं रहता. परिणामस्वरूप वह जहां-कहीं जिस-किसी भी प्रकारसे व्यवहार करने लग जाता है. अन्ततः उसे अधम फल मिलता है.

---

२. अहंकार : हमारी आन्तर-बाह्य सभी वृत्तिओंको एकसूत्रित करनेवाला तथा जीवचेतनासे क्रियाशक्तिको ले कर देहेन्द्रियोंको सक्रिय बनानेवाला आन्तरिक उपकरण.

३. मन : कामना संकल्प और विकल्प करनेवाली अंतःकरणकी वृत्ति.

४. बुद्धि : इन्द्रियोंद्वारा प्रस्तुत बाह्य विषयों या क्रियाओं के बारेमें निर्णय संशय भ्रम अज्ञान निद्रा का काम करनेवाला आन्तरिक उपकरण.

५. ज्ञानेन्द्रिय : आँख, नाक, कान, जीभ, और चमड़ी इन पांच इन्द्रियोंको 'ज्ञानेन्द्रिय' कहा जाता है.

६. कर्मेन्द्रिय : वाणी, हाथ, पाँव, उत्सर्ग तथा जनन इन पांच इन्द्रियोंको 'कर्मेन्द्रिय' कहा जाता है.

गुणोंसे बंधन :

तामस गुण सबसे अधिक अनिष्टकारक होनेके कारण उसका स्तर निम्न गिना जाता है. अतः तामसी मनुष्यका भी स्तर निम्न ही होता है. तामसगुणकी तुलनामें रजोगुण कुछ कम हानिकारक होता है. अतः रजोगुणको मध्यम कोटिका गुण माना जाता है. राजस मनुष्य मध्यम स्तरका होता है. इन दोनों गुणोंकी तुलनामें सात्त्विक गुण श्रेष्ठ गिना जाता है. इस कारणसे सात्त्विक मनुष्य भी श्रेष्ठ होता है. इन तीनों अवस्थासे भी उत्तम अवस्था निर्गुणकी होती है क्योंकि, भगवान् गीतामें आज्ञा करते हैं:—

> प्रकृतिमेंसे उत्पन्न हुवे सत्त्व रजस् और तमस् गुण शरीरमें रहे हुवे ब्रह्मके चैतन्यांशरूप जीवको बांधकर रखते हैं.

इससे सिद्ध होता है कि सत्त्वगुण चाहे कितना भी उत्तम क्यों न हो जीवको तो बंधनकर्ता ही होता है. सत्त्वादि गुण जीवको किस प्रकारसे बांधते हैं यह समझाते हुवे भगवान् गीतामें आज्ञा करते हैं कि मनुष्य जब कर्म करता है तब यह समझता है कि यह मैंने किया. ऐसा समझना, किन्तु, मनुष्यका सबसे बड़ा अज्ञान है. सचमुच तो प्रकृतिके सत्त्व रजस् और तमस् गुण ही हैं कि जो अपनेसे संबंधित कार्य आदमीसे करवाते रहते हैं. जिस प्रकार सारथी (रथ चलानेवाला) बिनाके रथमें यदि घोड़ोंको जोड़ दिया जाय तो घोड़े किसीभी दिशामें रथको ले जा सकते हैं. जिस समय जो घोड़ा ज्यादा तेजी से चलेगा उस वख्त वह घोड़ा उसकी इच्छा और ताकत के अनुसार रथको घसीटके ले जायेगा. ऐसी स्थितिमें रथमें बैठे हुवे बेचारे रथीको तो घोड़े जहां घसीटके ले जायेगा वहीं तटस्थभावसे जाना पड़ेगा. ठीक ऐसी ही स्थिति देहमें रहे हुवे जीवकी भी है.

सत्त्व रज और तमो गुण भी स्वच्छंद घोड़ोंकी तरह मनमाने कार्य जीवसे करवाते है; और शरीररूप रथमें बैठा हुवा जीव असहाय होकर बंध जाता है. हम आगे समझ गये उस प्रकारसे सत्त्वगुण ज्ञान कराता है. हमारे आसपास अच्छी-बुरी या

आवश्यक-अनावश्यक अनेक घटना घटित होती ही रहती हैं कि जिनमें हरेक घटनाका ज्ञान होना हमारेलिये जरूरी नहीं होता. फिरभी सत्त्वगुण उसके स्वभावसे ही ऐसी हर घटनाका ज्ञान हमें करवा देता है. रजोगुण लोभ उत्पन्न करानेवाला है. लोभीको कभी शांति मिल नहीं सकती. मनुष्यके मरण तक लोभ उसे भगदौड़ करवाता ही रहता है. तमोगुणका कार्य अज्ञान पैदा करना है. अज्ञान मनुष्यको हर तरहसे नुकसान पहुंचाता है. जीव यद्यपि अप्राकृत होता है फिर भी प्रकृतिके गुणोंसे बने देहमें रहता होनेके कारण गुण उसे जहां लेजाते हैं वहीं उसे जाना पड़ता है. इस प्रकार जीव गुणोंसे बंधता है.

निर्गुण :

इस प्रकार हम समझे कि गुण किस तरह से अपनी मन-मानी करके जीवात्माकेलिये बंधनकारी सिद्ध होते हैं. यही कारण है कि भगवान् निर्गुण या गुणातीत अवस्थाको सर्वश्रेष्ठ अवस्था गिनाते हैं. निर्गुण या गुणातीत होने का अर्थ है : प्रकृतिके सत्त्व रज और तम इन तीनों गुणोंके प्रभावसे मुक्त होकर स्वयंको प्रभुभक्तिमय बना देना. भक्तिमार्गमें यही स्थिति गुणातीत या निर्गुण अवस्था मानी जाती है. इस अवस्थाको प्राप्त करनेकेलिये मनुष्यको अधम अवस्थासे उत्तम अवस्थातक पहोंचना पड़ता है. यानि की तामससे राजस, राजससे सात्त्विक और सात्त्विकसे अंतमें निर्गुण ऐसे अधमसे उत्तम अवस्थाका क्रम है.

इस प्रकारसे हम गुण, उसके कार्यों, गुणोसे बंधन तथा उससे मुक्त होनेका प्रकार समझे. अब गुणोंके प्रभावके कारण भक्तिमें किस तरह भिन्नता आती है यह हम सरलतासे समझ पायेंगे. भक्तिके विभिन्न प्रकारोंको समझनेके पहले मार्गभेदके कारण किस प्रकारसे भक्तिमें भेद पड़ जाते है यह समझ लें.

मार्गभेद :

भगवान्द्वारा प्रवर्तित पुष्टि प्रवाह और मर्यादा मार्ग; अथवा

अन्य आचार्योंद्वारा प्रवर्तित मत-सम्प्रदायोंमें रहकर यदि भक्ति की जाती है तो भी उन-उन मार्ग या मत के प्रभावके कारण भक्तिमें भिन्नता आ जाती है. उदाहरणतया पुष्टिमार्ग उस स्नेहप्रधान भक्तिका उपदेश करता है, जो केवल प्रभुकी कृपासे ही प्राप्त होती है. जबकी मर्यादामार्ग भक्तिमें शास्त्रीय विधि-विधानोंको प्रमुखता देता है. अतः पुष्टिमार्गीकी भक्ति स्नेहप्रधान होगी जबकी मर्यादामार्गीकी भक्ति शास्त्रीय विधि-विधानोंकी प्रमुखतावाली होगी.

भक्तिके उपदेशक कुछ आचार्य भक्तिको मुक्तिका साधन मानकर भक्ति करनेका उपदेश करते हैं. जबकी श्रीमहाप्रभुजी तो—"भक्ति करना ही मुक्ति है इसलिये भक्तिकेलिये ही भक्ति करनी चाहिये" ऐसा उपदेश करते हैं. इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि आचार्योंकी भिन्न-भिन्न मान्यताओंके कारण किस प्रकारसे भक्तिके स्वरूपमें विविधता आ जाती है.

भक्तिके प्रकार :

स्वभावभेद गुणभेद तथा मार्गभेद के कारण भक्तिके मुख्यरूपसे चार प्रकार श्रीभागवतमें निरूपित किये गये हैं :—

(१)सात्त्विकभक्ति
(२)राजसभक्ति
(३)तामसभक्ति
(४)निर्गुण-पुष्टिभक्ति.

(१)सात्त्विकभक्ति : पापोंके नाशकेलिये, कर्मफलोंको अर्पण करनेकेलिये या अनिवार्य कर्तव्यरूप समझकर की जाती भक्तिको 'सात्त्विकभक्ति' कहा जाता है.—

(२)राजसभक्ति : धन-सम्पत्ति, स्वर्ग आदि उत्तम लोक, कीर्ति या ऐश्वर्य(शक्ति) प्राप्त करनेकेलिये की जाती भक्तिको 'राजसभक्ति' कहा जाता है.

(३)तामसभक्ति : किसीका अहित-बुरा हो ऐसी भावना रखकर, ईर्ष्यापूर्वक या भक्तिका ढोंग करके ओरोंको ठगनेकेलिये की जाती भक्तिको 'तामसभक्ति' कहा जाता है.

(४)निर्गुण-पुष्टिभक्ति : किसीभी प्रकारके फलकी प्राप्तिकी कामना रखे बिना पुरुषोत्तम श्रीकृष्णमें सतत मन लगा कर प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करनी इसे 'निर्गुण-पुष्टिभक्ति' कहा जाता है.

निर्गुण-पुष्टिभक्तिको ही 'अहैतुकी भक्ति' या 'अनिमित्ता भक्ति' भी कहा जाता है. किसी भी प्रकारके फलकी प्राप्तिकी इच्छाको 'हेतु' या 'निमित्त' कहा जाता है. किसी भी प्रकारके हेतु या निमित्त जिसमें न हों ऐसी भक्तिको 'अहैतुकी' या 'अनिमित्ता' कहा जाता है. भगवान् श्रीभागवतमें जिस निर्गुणभक्तिको सर्वश्रेष्ठ भक्तिके रूपमें तरीके गिनाते हैं, उसी निर्गुण-पुष्टिभक्तिका उपदेश श्रीमहाप्रभुजीने दिया है. इसीलिये पुष्टिभक्तिको 'निर्गुण-भक्ति' कहा जाता है.

निर्गुण-पुष्टिभक्ति सर्वोत्कृष्ट :

निर्गुण-पुष्टिभक्तिकी सर्वोत्कृष्टताका निरूपण भगवान्ने भागवतमें किया है :—

> मेरी सेवाको ही फलरूप माननेवाले मेरे निर्गुण सेवक तो किसी भी तरहकी मुक्तिकी मांग मेरेसे करते ही नहीं हैं. यदि मैं स्वयं चला कर प्रेमसे सालोक्य+ सार्ष्टि सामीप्य सारूप्य या एकत्व(सायुज्य)रूप भी मुक्ति दे दूं तो भी मेरी सेवाके बदलेमें किसी भी प्रकारकी मुक्तिको वे स्वीकारते नहीं हैं. इसीको स्वतंत्र फलरूप आत्यंतिक भक्तियोगके रूपमें पहचाना जाता है. इस भक्तियोगद्वारा भक्त तीनों गुणोंके प्रभावसे मुक्त होकर भगवद्भावको प्राप्त करता है.

+ सालोक्य = भगवान्के वैकुंठ लोकमें रहना.
सार्ष्टि = भगवान्के जैसा ऐश्वर्यशाली शक्तिशाली बनना.
सामीप्य = भगवान्के समीप रहना.
सारूप्य = भगवान्के जैसा रूप प्राप्त करना.
एकत्व=सायुज्य = भगवान्में लीन हो जाना.

निर्गुण पुष्टिभक्तिके प्रकार :

भगवान्ने सृष्टिके प्रारंभमें ही जीवोंको मुख्यरूपसे पुष्टि मर्यादा और प्रवाह ऐसे स्वभावोंके भेदसे भिन्न-भिन्न बनाये हैं. अतएव इन तीन स्वभावोंका मिश्रण करके कुछ मिश्रस्वभाववाले जीवोंका सृजन भी भगवान्ने किया है. इसलिये जिस जीवमें स्वयंके मुख्यस्वभावके साथ-साथ कोई अन्य स्वभाव भी मिश्रित हो तो ऐसे जीवको 'मिश्रजीव' कहा जाता है. किसी एक ही स्वभाववाले जीवको 'शुद्धजीव' कहा जाता है.

पुष्टिजीवोंके स्वभावभेदके कारण निर्गुणपुष्टिभक्तिके भी भिन्न-भिन्न प्रकार हो जाते हैं. अतः प्रथम जीवोंके प्रकारोंको समझना जरूरी है. इन्हे नीचे दीये गये चार्टके द्वारा अच्छी तरहसे समझा जा सकता है.

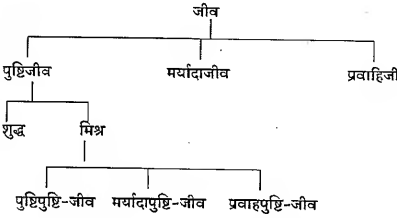

मुख्यरूपमें जीव तीन प्रकारके होते हैं : १.पुष्टिजीव २.मर्यादाजीव और ३.प्रवाहिजीव. पुष्टिजीवोंके मुख्य दो प्रकार होते हैं. शुद्धपुष्टिजीव और मिश्रपुष्टिजीव. मिश्रपुष्टिजीव पुनः तीन प्रकारके होते हैं : १.पुष्टिपुष्टि-जीव २.मर्यादापुष्टि-जीव और ३.प्रवाहपुष्टि-जीव.+

+ (१)पुष्टिपुष्टि-जीव : भक्तिमें उपयोगी होनेवाली हर बातोंका तथा भगवान्के स्वरूपका ज्ञान जीवको प्राप्त हो ऐसी कृपा = पुष्टि जिस पुष्टिजीवपर हो, उस जीवको 'पुष्टिपुष्टि-जीव' कहा जाता है.

इतनी भूमिका समझनेके बाद हम मूल बातपर आयें तो मिश्रपुष्टि जीव जब निर्गुणभक्तिकी ओर मुड़ते हैं तब उनके स्वभावके कारण निर्गुणभक्ति भी भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेती है. परन्तु निष्काम या निःस्वार्थ होना तो निर्गुणभक्तिके हर रूपोंमें कायम रहता है.

पुष्टिजीवोंके भेदके कारण निर्गुणभक्तिके चार उपभेद होते हैं :—

१.पुष्टिपुष्टि-भक्ति : भगवान्, भगवान्‌की लीला, लीला परिकर(व्रजभक्त इत्यादि), लीलाके स्थल(गोकुल वृन्दावनादि), जगद्-जीव आदि बातोंका वास्तविक ज्ञान तथा प्रभुमें सुदृढ़ सर्वतो अधिक स्नेहपूर्वक करनेमें आती प्रभुसेवाको 'पुष्टिपुष्टि-भक्ति' कहा जाता है.

२.मर्यादापुष्टि-भक्ति : भगवान् श्रीकृष्णके अलौकिक गुणोंके प्रेमपूर्वक श्रवण-स्मरण-कीर्तनद्वारा की जाती भक्तिको 'मर्यादापुष्टि-भक्ति' कहा जाता है.

३.प्रवाहपुष्टि-भक्ति : प्रभुमें स्नेह तथा महात्म्यज्ञान बिना मात्र कर्तव्य पालनके रूपमें प्रभुका सेवा स्मरण करनेमें आता हो तब उसे 'प्रवाहपुष्टि-भक्ति' कहा जाता है.

४.शुद्ध-पुष्टिभक्ति : भगवान् साक्षात् प्रकट हो कर अथवा तो अन्य किसी प्रकारसे जब किसी जीवको स्नेहका दान करते हैं तब वह जीव प्रभुमें सुदृढ़ तथा सर्वसे अधिक स्नेहवाला होकर व्रजभक्तोंकी तरह स्वाभाविक रूपसे ही प्रभुका सेवा-स्मरणादि करने लगता है. इसलिये प्रभुमें स्नेहकी उत्पत्तिके बाद सहजभावसे अपने-आप होती प्रभुकी सेवा-स्मरणादिको 'शुद्धपुष्टि-भक्ति' कहा जाता है.

प्रभुकी सेवा-स्मरणादिमें रुचि यानि कि पुष्टिभक्तिमार्गमें रुचि

---

(२)मर्यादापुष्टि-जीव : लौकिक बातोंमें जिसको आसक्ति नहीं हो और खास करके प्रभुके अलौकिक गुणोंके श्रवण-कीर्तन आदिमें आसक्तिवाले पुष्टिजीवको 'मर्यादापुष्टि-जीव' कहा जाता है.

(३)प्रवाहपुष्टि-जीव : प्रभुकी सेवासंबंधी बाह्य कार्योंमें रुचि रखनेवाले तथा प्रभुमें अल्पस्नेहवाले पुष्टिजीवोंको 'प्रवाहपुष्टि-जीव' कहा जाता है.

भगवान्‌की कृपा या इच्छा से ही होती है. ऐसे भगवत्कृपावान् हर पुष्टिभक्तिमार्गी, परंतु, पुष्टिपुष्टि-भक्तिवाले नहीं होते; फिरभी प्रभु उनको भक्तिकी उच्च अवस्थातक पहोंचाना चाहते हैं, ऐसा अनुमान उन जीवोंमें मार्गरुचि होनेपर किया जा सकता है. अतः इन जीवोंको भक्तिकी वृद्धिकेलिये प्रयास निष्ठापूर्वक करने चाहिये. ऐसा करनेसे प्रवाहपुष्टि-भक्तिसे मर्यादापुष्टि-भक्ति और मर्यादापुष्टि-भक्तिसे पुष्टिपुष्टि-भक्ति इस तरह उत्तरोत्तर भक्तिकी उच्च अवस्थाको प्राप्त किया जा सकता है. शुद्धपुष्टि-भक्ति तो जिस जीवपर भगवान्‌की अति कृपा होती है उसे ही मिल सकती है.

इसीलिये श्रीमहाप्रभुजी पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद ग्रंथमें आज्ञा करते हैं :—

शुद्धाः प्रेण्णातिदुर्लभाः

भावार्थ : शुद्धपुष्टि-जीव अत्यंत दुर्लभ होते है.

शुद्धपुष्टिभक्तिका स्वरूप लक्षण देते हुवे भगवान् श्रीभागवतमें आज्ञा करते :—

जैसे गंगा नदी तनिक भी अटके बिना समुद्रकी ओर बहती रहती है वैसे ही भगवान्‌के गुणको सुनते ही जब मेरी सेवा-स्मरणमें निःस्वार्थ और निर्बाध प्रवृत्ति होने लग जाये तब उसे 'निर्गुण-भक्तियोग' कहा जाता है.

विषेश अध्ययनके लिये ग्रंथ :

श्रीमहाप्रभुजी विरचित पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद.
भगवद्गीता अध्याय १४, १७, १८.
श्रीभागवत् स्कन्ध ३.

पुष्टिप्रवेश - १ बोधपरीक्षण

(अ) प्रश्नोंके उत्तर विचारें.

पाठ - १. श्रीमहाप्रभुजी

१. साधारण मनुष्योंके जन्म-मरण किस कारणसे होते हैं?
२. महापुरुषोंके जन्म-मरणमें क्या विशेषता होती है?
३. श्रीमहाप्रभुजीको पृथ्वीपर प्रकट होनेकी भगवदाज्ञाका कारण क्या था?
४. भगवान्ने श्रीमहाप्रभुजीको कौनसे तीन कार्य सौंपे थे?
५. श्रीमहाप्रभुजी यदि प्रकट न होते तो क्या-कैसी परिस्थिति होती?
६. जगन्नाथपुरीकी राज्यसभामें कौनसे प्रश्न पूछे गये थे ?
७. श्रीजगन्नाथरायजीके सामने रखे गये प्रश्नोंके उत्तर क्या मिले?
८. श्रीमहाप्रभुजीके त्यागका वर्णन करें.
९. श्रीमहाप्रभुजीकी सादगीका वर्णन करें.
१०. श्रीमहाप्रभुजी एकांत स्थल अड़ैल गाममें क्यों बिराजे?
११. आदर्शगुरु कैसे होते हैं?
१२. "पुष्टिभक्तिमार्ग मात्र पुष्टिजीवोंकेलिये ही है" क्यों?
१३. पुष्टिभक्तिमार्ग विश्वधर्म नहीं है; क्यों?
१४. श्रीमहाप्रभुजी स्वयंके शिष्योंके भक्तिमार्गीय विकासकी कितनी सावधानि रखते थे?
१५. गुरुको अपने शिष्योंके विकासकी सावधानि किस भांति रखनी चाहिये?

(आ) व्याख्या/परिभाषा लिखें.

(१) दैवी (२) परमत (३) वाद (४) ब्रह्मसूत्र (५) मीमांसासूत्र (६) गायत्रीमन्त्र.

पाठ - २. श्रीगोपीनाथजी

(अ)

१. श्रीगोपीनाथजीने 'साधनदीपिका' ग्रंथकी रचना क्यों की?
२. भावका तमाशा कब बन जाता है?
३. गुरुको भगवत्सेवा किस रीतिसे करनी चाहिये?
४. "धर्मः क्षरति कीर्तनात्" —शास्त्रकी इस उक्तिको भगवत्सेवाके साथ कैसे जोड़ोगे?
५. "जो अत्यंत आत्मीय वैष्णव हो उसे ही अपने घर बिराजते प्रभुके दर्शन कराने चाहिये" —ऐसा क्यों?

(आ) (१) अनवसर.

पाठ - ३. श्रीगुसांईजी

(अ)

१. श्रीगुसांईजीके दिव्यत्यागकी कथाका वर्णन करिये.
३. धनको तजने लायक क्यों माना गया है? यदि उसे छोड़ा न जा सकता हो तो क्या करना चाहिये?
४. पुष्टिमार्गीय हो कर जो प्रभुसेवामें निवेदितका समर्पण न करता हो तो क्या हानि होती है?
५. श्रीमहाप्रभुजीने गृहसेवाका मार्ग क्यों दिखाया?
६. श्रीगुसांईजीने सेवाके क्रममें भोग-राग-शृंगारके वैभवपूर्ण विनियोगवाला प्रकार क्यों प्रकट किया?

(आ) (१) निवेदित (२) समर्पण

पाठ - ४. श्रीयमुनाजी

(अ)

१. श्रीयमुनाजीका प्राकट्य क्यों हुवा है?
२. 'भुवनपावनीं'का अर्थ समझाईये.
३. श्रीयमुनाजीके आठ ऐश्वर्योंको गिनाईये.

पाठ - ५. श्रीकृष्ण

(अ)

१. आसुरी जीव श्रीकृष्णका आश्रय नहीं करते, क्यों?
२. भगवान्का स्वरूप क्यों समझमें नहीं आता?
३. भगवान्ने व्रजवासिओंकी इन्द्रपूजा क्यों बन्द करवाई?
४. भगवान् किसकी संपत्तिका हरण करते हैं?
५. दैवी जीव भी भगवान्के स्वरूपको भूल जाते हैं, क्यों?
६. प्रभुका ज्ञान तथा प्रभुकी प्राप्ति किससे होती है?
७. परब्रह्म श्रीकृष्ण विरुद्धधर्माश्रयी हैं, किस तरह?
८. परमात्मा साकार है या निराकार, कारण बताओ.
९. शास्त्रमें श्रीकृष्णको 'ब्रह्म-परमात्मा-भगवान्' आदि जुदे-जुदे

नामोंसे वर्णित किया जाता है, क्यों ?

१०. पुराणोंमें देवी-देवताओंका जो परतत्त्वके रूपमें वर्णन किया गया है वह वस्तुतः तो श्रीकृष्णकी परतत्त्वताका ही निरूपण है, कैसे ?

११. श्रीकृष्णको 'परब्रह्म' कौनसी दृष्टिसे कहा जाता है ?

१२. श्रीकृष्णको 'अंतर्यामी' क्यों कहा जाता है ?

१३. पूर्णावतार कब प्रकट होता है ?

१४. मूढ़ लोग (मंदबुद्धि) श्रीकृष्णको क्या-कैसे समझते हैं ? ऐसे लोगोंके बारेमें भगवान् गीतामें क्या कहते हैं ?

(आ)

(१) मुक्ति (२) साधनाभिमान (३) साधन (४) विरुद्धधर्माश्रय (५) व्यापक (६) कारण (७) अव्यक्त (८) अक्षरब्रह्म (९) अन्तर्यामी (१०) अवतारी (११) भगवान् (१२) पूर्णावतार (१३) अंशावतार (१४) आवेशावतार (१५) अलौकिक (१६) अप्राकृत (१७) अवतार.

पाठ–६. जीव

(अ)

१. जीवका स्वरूप समझाईये. जीवकी ब्रह्मरूपता क्यों दिखलाई नहीं देती ?

२. जीवमेंसे आनंदधर्मका तिरोभाव होनेपर क्या-कैसा परिवर्तन होता है ?

३. जीवकी तीन अवस्थाओंका वर्णन करो.

४. कितने प्रकारके जीव होते हैं वर्णन करो.

५. विभिन्न प्रकारके जीवोंकी पहेचान कैसे हो पाती है ?

६. पुष्टिजीव स्वयंके कर्तव्यको क्यों भूल गये ?

(आ)

(१) जीव (२) शुद्धजीव (३) बद्ध/संसारी जीव (४) मुक्तजीव (५) अविद्या (६) प्रवाहिजीव (७) मर्यादाजीव (८) पुष्टिजीव (९) निष्ठा (१०) आवेश.

पाठ–७. जगत्

(अ)

१. जगत्को भगवान्की क्रीड़ा या भगवल्लीला क्यों कहा जाता है ?

२. तीन प्रकारसे जगत्का अनुभव होता है. दृष्टान्त सहित समझाईये.

३. प्रभुने जगत्की रचना क्यों की ?

४. जगत् ब्रह्मात्मक होनेपर भी ब्रह्मात्मक दीखता क्यों नहीं है ?

५. जगत्को 'सत्य' क्यों कहा जाता है ?

(आ)

(१) वेदान्त/उपनिषद् (२) सत् (३) चित् (४) आनन्द (५) आविर्भाव (६) तिरोभाव (७) जड़ (८) पञ्चमहाभूत (९) ब्रह्मात्मक (१०) आस्तिक (११) नास्तिक.

पाठ–८. मार्ग

(अ)

१. मार्गके प्रकारोंका विवेचन विस्तारसे करो.

२. भगवान्ने हमारा वरण किस मार्गमें किया है इसे कैसे जानना ?

३. ब्राह्मणोंने धर्मको आजीविकाका साधन क्यों बनाया ?

४. जीव श्रीकृष्णकी निष्काम भक्ति करना क्यों भूल गया ?

५. भगवान्ने श्रीमहाप्रभुजीको पुष्टिजीवोंके उद्धार करनेकी आज्ञा क्यों दी ?

(आ)

(१) मार्ग (२) पुष्टिभक्तिमार्ग (३) मर्यादामार्ग (४) कर्ममार्ग (५) ज्ञानमार्ग (६) उपासनामार्ग (७) लौकिक (८) पारलौकिक (९) वैराग्य (१०) संन्यास (११) प्रवाहमार्ग (१२) नित्यकर्म (१३) नैमित्तिककर्म (१४) निषिद्धकर्म (१५) काम्यकर्म.

पाठ–९. सम्प्रदाय

(अ)

१. संप्रदायकी आवश्यकता समझाईये.

२. विभिन्न धर्म-संप्रदाय न होते तो क्या-कैसा होता ?

३. संप्रदाय बाड़ा नहीं हैं, कारण बताईये.

४. अनुसरण करने लायक संप्रदायका निर्णय कैसे लेना ?

५. संप्रदायकी संरचना समझाईये.

६. दूसरेको धन दे कर अथवा दूसरेका धन ले कर कृष्णसेवा

की जाती हो तो क्या परिणाम निकलता है?

७. सार्वजनिक मंदिर-हवेलीमें सेवा करनेवाले गुरुको क्या परिणाम भुगतने पड़ते हैं?

८. साधनाके आंतर-बाह्य पक्षोंको समझाईये.

९. किसी संप्रदायका अनुसरण किये बिना किया-धरा कर्म निष्फल जाता है, क्यों?

१०. उत्तम-मध्यम-हीन कक्षाके साधकोंके लक्षण बताईये.

(अ)

(१) सम्प्रदाय (२) तत्त्वोपदेश (३) सिद्धान्तोपदेश (४) व्यवहारोपदेश (५) फलोपदेश.

पाठ–१०. पुष्टिभक्तिमार्ग

(अ)

१. भक्तोंद्वारा की गयी भक्ति किस स्थितिमें पुष्टिभक्ति नहीं रह जाती?

२. बूला मिश्रकी वार्तासे क्या-कैसा सिद्धान्त समझमें आता है?

३. दर्शनवादी लोग पुष्टिमार्गके अनुगामी होने लायक नहीं होते, क्यों?

४. दर्शनवादी लोग पुष्टिजीव नहीं हो सकते, कैसे?

५. श्रीमहाप्रभुजीने एक वख्त बूला मिश्रको टालनेलिये प्रयत्न क्यों किया?

६. अपनी पसंदके मार्गमें ही प्रवेश करना चाहिये, क्यों?

(आ)

(१) दर्शनवादी.

पुष्टिप्रवेश–२ बोधपरीक्षण.

पाठ–११. भगवदाश्रय

१. प्रह्लादने हिरण्यकशिपुके प्रथम प्रश्नका क्या उत्तर दिया?

२. हिरण्यकशिपुके पूछे हुवे दूसरे प्रश्नका प्रह्लादने क्या उत्तर दिया?

३. प्रह्लादको अग्निमें फेंक दिया था तब उसने जो उत्तर दिया था उसका भावार्थ समझाईये.

४. मनुष्यदेहकी विशेषता क्या है.

५. बूढ़े होने की प्रतिक्षा करने के बजाय प्रभुके सेवा-स्मरणमें लग जाना चाहिये,— विस्तारसे समझाईये.

६. "बुढ़ापेमें हरिगुण गायेंगे" ऐसी मान्यता रखनेवालोंकेलिये क्या कहा गया है?

७. युधिष्ठिर— भीमकी घटनासे क्या बोधपाठ मिलता है?

८. आश्रय शब्दके दो अर्थ लिखिये.

९. प्रभुका आश्रय न लेनेवालेकेभी आश्ररूप भगवान हैं ही; कैसे?

१०. प्रभुके आश्रयका बार-बार स्मरण करना क्यों जरूरी है ?

११. प्रभुका स्मरण न करनेपर क्या परिणाम आता है?

१२. लौकिक सुख-दुःख के अनुभवका कारण क्या है?

१३. लौकिक सुख भी दुःखदायक लगनेका कारण क्या है?

१४. लौकिक अहंकार किसे कहा जाता है?

१५. प्रभुशरणागत जीव सुख-दुःखोंकी वेदनासे पर क्यों हो जाता है?

१६. जिसका अंतःकरण अलौकिक हो जाता है उसे कैसा अनुभव होता है?

१७. तटस्थ या साक्षीभाव कैसा होता है?

१८. प्रभुकी शरणमें न रहनेवाले जीवोंको होनेवाली सुख-दुःखकी पीड़ा का कारण क्या है?

१९. प्रभुकेलिये सब जीव एक समान होते हैं फिर भी प्रभुके सेवा-स्मरण करनेवाले जीवोंको प्रभु स्वयं से अभिन्न क्यों मानते हैं?

२०. भगवद्भक्त प्रभुका स्मरण किस प्रकारसे करता है?

२१. भगवद्भक्त जगतमें घटती घटनाओंको किस दृष्टिसे देखता है?
२२. प्रभुका स्मरण दुःखमें ही या सुखमें भी? क्यों ?
२३. प्रभु किसका रक्षण करते हैं?
२४. भगवत्कार्य मुख्य है जबकि लौकिक-वैदिक कार्य अमुख्य —यह किस प्रमाणवचनोंसे सिद्ध होता है?
२५. प्रभुसे मांगनेका अविवेक कैसे लोग किया करते हैं?
२६. प्रभुसे मांगनेका विचार छोड देना चाहिये; क्यों?
२७. भगवान भक्तको वरदान द्वारा ललचाकर उसकी क्या परिक्षा लेते हैं?
२८. सच्चा सेवक किसे कहा जाता है? क्यों?
२९. सच्चा स्वामी किसे कहा जाता है? क्यों?
३०. प्रह्लादने भगवान्‌के पास क्या वरदान मांगा? क्यों?
३१. भगवानका आश्रय सर्वदा किस तरह; समझाईये.
३२. भगवानका आश्रय सर्वथा किस तरह; समझाईये.
३३. यमराजने अपने सेवकोंको कहे हुवे वचनोंका तात्पर्य समझाईये.
३४. भगवदाश्रयकी दृढताके उपाय गिनाईये.
३५. दीनताभावके विरोधी मनोविकार गिनाईये.
३६. अभिमान आदि दुर्भाव यदि मनमें हों तो उनसे क्या परिणाम निकलता है?

(आ)व्याख्या / परिभाषा लिखिये.

(१) आश्रय (२) लौकिक अहंकार / कर्तापनेका अभिमान (३) मनसे भगवदाश्रय (४) वाणीसे भगवदाश्रय (५) कायासे भगवदाश्रय (६) जीवस्वरूपज्ञान (७) निःसाधनताभावन (८) दीनता.

पाठ–१२. अन्याश्रयत्याग

(अ)

१. 'अन्याश्रय' शब्दका अर्थ समझाईये.
२. अनन्यताका भंग कब कहा जाता है?
३. पुष्टिभक्तिमार्गमें अन्याश्रयको दोषरूप क्यों माना जाता है?
४. अन्याश्रय किया, कब कहा जाता है?
५. कोई भी देवमें श्रध्या-भक्तिका अनुमान किस प्रकारसे हो

सकता है?
६. इष्टदेवके साथे किस प्रकार व्यवहार करना; यह किस तरह समझा जा सकता है?
७. अन्याश्रय कौन-कौनसे प्रकारसे हो सकता है, ये गिनाईये.
८. "अन्याश्रयत्यागका अर्थ अन्य देवोंका अनादर नहीं" —समझाईये.
९. "अन्य देव पुष्टिभक्तिमार्गीकेलिये आदरणीय हो सकते हैं, भजनीय नहीं" —समझाईये.
११. अन्य देवी-देवताओंका आदर वैष्णवको कब और किस प्रकारसे करना चाहिये?
१२. किस प्रकारके फलकी कामनावालोंको अन्य देवी-देवताओंके पास जाना चाहिये?
१३. किस प्रकारके फलकी कानावालोंको श्रीकृष्णके पास जाना चाहिये?
१४. अन्याश्रय करनेके पीछे छुपे हुवे हेतु समझाईये.
१५. असंतोषके कारण अन्याश्रय किस तरहसे होता है?
१६. भयके कारण अन्याश्रय किस तरहसे होता है?
१७. वैष्णव होनेके बाद घरमें विराजती देवमूर्ति चित्र आदि का क्या करना चाहिये?
१८. अविश्वाससे अन्याश्रय किस तरहसे होता है?
१९. प्रभुस्वरूपके अज्ञानसे अन्याश्रय किस तरहसे होता है?
२०. दुःसंगसे अन्याश्रय किस तरहसे होता है?
२१. सिध्धान्तके अज्ञानसे अन्याश्रय किस तरहसे होता है?

(आ) व्याख्या / परिभाषा लिखिये :–

१. अन्याश्रय २. इष्टदेव.

पाठ–१३. शरणमार्ग

(अ)

१. भगवान्‌ने अर्जुनकी शरणागतिका कब स्वीकार किया?
२. भगवान्‌ने गीतामें दिया हुवा शरणमार्गका महान उपदेश क्या है?
३. शरणके छह अंग गिनाईये.

४. शरणके छह अंग समझाईये.
५. पुष्टिमार्गमें शरणमार्गके दो रूप हैं; कौन-कौनसे ? किस तरहसे ?
६. भक्तिमार्गीयोंकेलिये शरणमार्ग किस तरह उपयोगी है ?
७. निःसाधन जीवकेलिये शरणमार्ग किस तरह उपयोगी है ?
८. शरणमार्गमें प्रवेश क्यों प्राप्त करना चाहिये ?
९. पुष्टिमार्गीके जीवनमें सबसे बड़ा और सुखद अवसर कौनसा होता है ?
१०. शरणमार्गीके कर्तव्य गिनाईये.
११. मार्गदर्शककी पूरी पहचान और उस पर पूर्ण विश्वास न हो तो क्या होता है और होने पर क्या लाभ होता है ?
१२. पुष्टिभक्तिमार्गका अनुगामी होका क्या अर्थ होता है ?
१३. पुष्टिभक्तिमार्गका अनुगामी बनना कब शक्य बनता है ?
१४. पुष्टिभक्तिमार्गीको यदि श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूपका ज्ञान; और आपश्री पर विश्वास न हो तो क्या परिणाम हो सकता है ? और यदि हो तो क्या परिणाम आ सकता है ?
१५. श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूपका ज्ञान किस तरहसे प्राप्त किया जा सकता है ?
१६. सिध्धान्तोंका ज्ञान शरणमार्ग पर चालनेवालोंकेलिये जरूरी है; क्यों ? दृष्टान्त सहित समझाईये.
१७. सिध्धान्तोंका ज्ञान न होने पर क्या दुष्परिणाम आता है ?
१८. सिध्धान्तके ज्ञानसे कौन-कौनसी बातें ध्यानमें आती है ?
१९. भक्तिभावकी वृद्धिकेलिये क्या जरूरी है ? किस तरहसे ?
२०. श्रवण-कीर्तन-स्मरणसे क्या लाभ होता है ?
२१. वैष्णवचिह्नोंकी उपयोगिता समझाइये.
२२. शरणमार्गके कर्तव्योंका पालन कौनसे हेतुसे करना चाहिये ?
२३. प्रभुकी शरणमें जानेवाले जीवको मिलते तीन लाभोंका दृष्टान्तसहित वर्णन कीजिये.

पाठ–१४. पुष्टिभक्ति

(अ)

१. कोइ एक ही कार्य कौन-कौनसे कारण अलग-अलग रूप

धारण कर लेता है ?
२. दियाहुवा दान धर्मविरुद्ध कब बनता है ?
३. शुद्धि-अशुद्धि पालन करनेके उपदेशको सदाचारका उपदेश कब कहा जाता है ?
४. शुद्धि-अशुद्धि पालन करनेका उपदेश अत्याचार कब बन जाता है ?
५. अन्याश्रय कब होता है; और कब नहीं होता है ?
६. असमर्पितका उपयोग नहीं करनेका उपदेश किसे लागु पड़ता है; और किसे नहीं ?
७. भक्तिकी विभिन्नताके कारण गिनाईये.
८. स्वभावभेदके कारण भक्तिके स्वरूपमें किस प्रकारसे भेद होते है ?
९. सात्त्विक किसे कहा जाता है ?
१०. राजस किसे कहा जाता है ?
११. तामस किसे कहा जाता है ?
१२. गुणोंमें परिवर्तन होनेके कारण गिनाईये.
१३. सत्त्वगुणके कार्य समझाईये.
१४. रजोगुणके कार्य समझाईये.
१५. तमोगुणके कार्य समझाईये.
१६. तीन गुणोंमें कौनसा गुण श्रेष्ठ, कौनसा मध्यम और कौनसा अधम गिना जाता है ?
१७. गुणोंसे जीवको बंधन किस प्रकारसे होता है ? दृष्टान्तसहित समझाईये.
१८. निर्गुण अवस्था किस प्रकारसे प्राप्त की जा सकती है ?
१९. मार्गभेदके कारण भक्तिके स्वरूपमें किस प्रकारसे भिन्नता आती है ?
२०. सम्प्रदाय-मतभेदके कारण भक्तिके स्वरूपमें किस प्रकार भिन्नता आती है ?
२१. भक्तिके मुख्य प्रकार बताईये.
२२. निर्गुणसेवक कैसे होते हैं ?
२३. निर्गुण पुष्टिभक्तिके प्रकार गिनाईये.
२४. शुद्धजीवोंके प्रकार गिनाईये.

२५.मिश्रजीवोंके प्रकार गिनाईये.
२६.निर्गुण पुष्टिभक्ति भिन्न-भिन्न रूप कब धारण कर लेती है?
२७.पुष्टिभक्तिमार्गीको प्रभु भक्तिकी उच्च अवस्था तक पहुंचाना चाहते हैं ऐसा अनुमान किस आधारपर किया जा सकता है?
२८.भक्तिकी उत्तरोत्तर उच्च अवस्थाका क्रम बताईये.

(आ) व्याख्या / परिभाषा लिखिये.
(१) पुष्टिभक्ति (२) गुणातीत-निर्गुण (३) सात्त्विकभक्ति (४) राजसभक्ति (५) तामसभक्ति (६) निर्गुणभक्ति (७) शुद्धजीव (८) मिश्रजीव (९) पुष्टिपुष्टिजीव (१०) पुष्टिपुष्टिभक्ति (११) मर्यादापुष्टिजीव (१२) प्रवाहपुष्टिजीव (१३) शुद्धपुष्टिजीव (१४) मर्यादापुष्टिभक्ति (१५) प्रवाहपुष्टिभक्ति